मुद्रक—

न्यू इण्डिया प्रिण्टिङ्ग वर्क्स

इलाहाबाद

उपहार

दो शब्द

यह पुस्तक श्रीयुत जेम्स एलन की लिखी हुई, सर्वोत्तम पुस्तक 'दी लाइफ ट्रमफैन्ट' (The life Triumphant) का हिन्दी भाषान्तर है। इसकी भाषा उच्च कोटि की साहित्यक हिन्दी है। मेरा अनुमान तो यहाँ तक है कि यह मूल लेखक की शैली से कहीं विशेष उत्कृष्ट और कलात्मक है।

यदि नवयुवक ऐसी पुस्तकों को अपने दैनिक पाठ्य क्रम में रखने लगें तो बढ़ती हुई बेकारी, नैराश्य तथा आत्महत्या इत्यादि की समस्याओं का अनेक अंशों में निवारण हो जावे। आशा है यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी और पाठकों को पसन्द आवेगी।

प्रकाशक

विषय सूची

गौरवशाली जीवन

—:o:—

१—विश्वास और साहस

—:o:—

जो मनुष्य वीरता पूर्वक युद्ध करते हैं और कभी पराजय स्वीकार नहीं करते उन्हें दुर्धर्ष जीवन-संग्राम में महान् विजय प्राप्त होती है। हम यह बात प्रारम्भ में ही घोषित कर देना चाहते हैं जिस से पाठक समझ जायँ कि इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है। इस पुस्तक में आगे चल कर हम बतलावेंगे कि चरित्र और आचरण में कौन से तत्व हैं जो जीवन को शान्त, सुदृढ़ और सर्वोत्कृष्ट विजयी बनाने में सहायक होते हैं।

सत्य का सदा अनुगमन करना; अनेक यातनाओं और कष्टों के पश्चात् विवेक और आनन्द प्राप्त करना; अन्त में पराजित और बहिष्कृत न होना, प्रत्युत अन्ततः प्रत्येक आन्तरिक शत्रु पर विजय प्राप्त करना—यही मनुष्य का दिव्य लक्ष्य है, यही उसका महान उद्देश्य है; और यही बात प्रत्येक सन्त, महात्मा और धर्मदूत ने घोषित की है।

मनुष्य संसार में सदा विद्यालय का विद्यार्थी बना रहने और अपनी अज्ञानता तथा अपराधों के लिये दंडित किए जाने के लिए नहीं है; जब कभी उस में दृढ़ इच्छा और अभिलाषा उत्पन्न होती है वह अपने मस्तिष्क को अपने लक्ष्य पर लगा सकता है और जीवन के पाठों को पूर्ण रूप से हृदयंगम कर संशय-रहित और प्रवीण विद्वान् बन सकता है तथा अज्ञानता और दुर्गति से दूर रह कर विवेक और शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकता है।

जीवन के संताप, गहन और असीम हैं, परन्तु वे सीमित और निर्मूल किए जा सकते हैं; मानव-प्रकृति की वासनाएँ और मनोवेग, अपनी अनियंत्रित दशा में ओतप्रोत और अत्यधिक विरोधी होते हैं, किन्तु वे इतने शिथिल, विवेक पूर्वक नियंत्रित और गम्य किए जा सकते हैं कि विशद उद्देश्यों की भली भाँति पूर्ति के लिए उन्हें आज्ञाकारी अनुचर बनाया जा सकता है। जीवन की कठिनाइयाँ महान, इसका संग्राम भयावह और इसके मनोवांछित लक्ष्य अनिश्चित तथा निर्गम हैं; यहाँ तक कि प्रत्येक घड़ी स्त्री और पुरुष अतिश्रम से परिक्लान्त हो विनष्ट हुए जा

रहे हैं; तथापि इन परिस्थितियों की कोई आधार-वस्तु और स्वतंत्र सत्ता नहीं है; अपने यथार्थ रूप में वे निराधार और निरी काल्पनिक हैं और इनका अतिक्रमण किया जा सकता है। सृष्टि के विधान में कहीं भी स्वाभाविक और स्थायी दोष नहीं है और अपने मस्तिष्क को उस नैतिक उत्कर्ष तक पहुँचाया जा सकता है जहाँ इसे पाप फिर कभी स्पर्श ही नहीं कर सकता।

अपूर्ण अवस्था में अपनी दयाशीलता और आत्म-सिद्धि की ओर अधिक उन्मुख रहता है, परन्तु मनुष्य को मोक्ष-प्राप्ति हो सकती है और जिसे मुक्त जीवन व्यतीत करना है उसे अवश्य होनी चाहिए। सर्व प्रथम मनुष्य में अवश्य ही विश्वास होना चाहिए और पूर्ण सिद्धि तथा ज्ञान प्राप्त होने तक विश्वास पर अटल रहना चाहिए।

यदि जीवन की यातनाओं को केवल अभ्यास के लिए प्रयोग समझ लिया जाय तो वे बहुत हल्की हो जातो हैं और विश्वास-परायण व्यक्ति उन्हें ऐसा ही मानता है। जीवन की यातनाओं से उस समय ऊपर उठा जाता है और वे परित्यक्त हो जाती हैं जब कि सभी अनुभवों की गणना कल्याणकारी वस्तुओं में की जाती है और उनका उपयोग चरित्र-निर्माण में होता है और ज्ञानी व्यक्ति इसी तरह का समझ कर उनका उपयोग भी करता है।

विश्वास मंजुल उषा है जो ज्ञान के पूर्ण और प्रस्फुटित दिवा-काल के पूर्व उदित होती है। इसके बिना शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और हृदय में अटल दृढ़ता नहीं आ सकती। विश्वास-परायण मनुष्य

कि उन को दूसरों ने किस प्रकार धोखा दिया, छल किया और कुमार्ग पर लगाया। वे समझते हैं कि सब कुछ विश्वासपात्रता, निष्कपटता, ईमानदारी और सरल स्वभाव उन्हीं में है और दूसरे प्रायः सभी मनुष्य सब कुछ दोषों युक्त और पातकी ही हैं। वे कहते हैं कि यदि वे भी वैसेही स्वार्थी होते जैसे दूसरे होते हैं तो वे भी दूसरों की तरह सम्पन्न और प्रतिष्ठित हो गए होते; और उनका सब से बड़ा दोष और असफलता का सब से बड़ा कारण केवल यह था कि वे बहुत स्वार्थत्याग की भावना से युक्त उत्पन्न हुए थे। इस तरह आत्म-प्रशंसा में लीन अभि-योगी गुण और दोष की परख नहीं कर सकते और मानव-प्रकृति तथा विश्व की पुण्य-वृत्ति का उनका विश्वास विलुप्त हो गया होता है। दूसरों को देखते हुए उनकी दृष्टि केवल दोप पर ही पड़ती है अपने को देखते हुए उनकी दृष्टि केवल दूसरों के अत्याचार से पीड़ित अपनी सरलता पर ही पड़ती है। अपने में कोई दोष ढूंढ़ने के स्थान पर वे सारे मानव-समाज को ही दोषों से परिपूर्ण समझना ठीक समझते हैं। उन्हों ने अपने हृदय में पाप के घृणित

रूप से निश्चय ही अपने स्वभाव के उत्तम गुणों का त्याग और दमन करना चाहिए उन्हें शान्ति और सुख का क्या आनन्द मिल सकता है! उन में साहस और बल का किस प्रकार संचार हो सकता है! जो व्यक्ति यह समझता है कि पाप पुण्य से अधिक प्रबल होता है और पापी व्यक्ति ही जीवन में अधिक आनंद का उपभोग करते हैं, वह अब भी पाप के तत्वों में फँसा हुआ है और इस दशा में उस की पराजय होती है और निश्चय-पूर्वक होनी चाहिए।

यह आप को दिखलाई पड़ सकता है कि संसार पापाचारों के सन्मुख सिर झुकाए हुए है; पापी फलते फूलते हैं और पुण्यात्मा असफल होते हैं; सर्वत्र केवल दाव, अन्याय और अव्यवस्था ही है; किन्तु इन बातों पर कभी भी विश्वास न कीजिए; इन बातों को माया-जाल समझिए; यह परिणाम निकालिए कि आप जीवन को उस रूप में नहीं देख रहे हैं जैसा यथार्थ में वह है, आपने सब बातों के मूल कारणों को नहीं ढूंढ़ निकाला है, और जब आप अधिक निर्मल हृदय और अधिक विवेक पूर्ण मस्तिष्क से जीवन पर दृष्टि डाल सकेंगे तो आप उसकी समदर्शिता को

देख और समझ सकेंगे। और जब वास्तव में उस प्रकार जीवन पर दृष्टि डालेंगे तो जहाँ आपको पाप दिखाई पड़ता है वहाँ पुण्य दिखाई पड़ेगा, जहाँ अव्यवस्था प्रतीत होती है वहाँ व्यवस्था प्रतीत होगी और जहां अन्याय प्रसारित ज्ञात होता है वहां न्याय दृष्टिगोचर होगा।

विश्व सृष्टि है, अव्यवस्था नहीं और पापी सुख के भागी नहीं होते। यह सत्य है कि संसार में पाप अधिक है, अन्यथा नैतिक आदर्शों की आवश्यकता नहीं पड़ती, किन्तु संसार में क्लेश भी अधिक है और पाप तथा क्लेश कारण और कार्य रूप में परस्पर सम्बद्ध हैं। किन्तु यह भी सत्य ही है कि संसार में पुण्य अधिक है और आनंद का भी अधिक वास है एवं पुण्य तथा आनंद कारण और कार्य रूप में परस्पर सम्बद्ध हैं।

जिस व्यक्ति ने पुण्य के प्रभुत्व और प्रभाव पर इतना विश्वास जमा लिया है जिसे कोई भी दिखावटी अन्याय, अत्यधिक यातना वा कोई दुर्घटना भी हिला नहीं सकती, वह सभी आपदाओं, परीक्षणों और कठिनाइयों को ऐसे अपूर्व साहस के साथ पार कर सकता है जो सन्देह और नैराश्य की विभीषिका का भी दमन कर सकती है। वह अपनी समस्त योजनाओं में भले

ही सफल न हो; उसे चाहे अनेक असफलताओं का भी सामना करना पड़े; किन्तु जब वह असफल होता है तो उसका परिणाम यह होगा कि वह अधिक ऊंचे आदर्शों को सामने रक्खेगा और उच्चतर सफलताओं का भागी होगा। वह केवल इसलिए असफल होगा कि उसने पहले जिसकी कल्पना की थी उससे महान् सफलता उसे प्राप्त हो सके। उसका जीवन असफल न तो होगा और न हो सकता है; उसको कुछ छोटी मोटी बातों में असफलता हो सकती है, परन्तु वे ऐसी ही होंगी मानों चरित्र और घटनाओं की शृंखला में दुर्बल कड़ियाँ टूट गई जिससे सम्पूर्ण शृंखला अधिक दृढ़ और पूर्ण निर्मित की जा सके।

एक प्रकार का पाशविक साहस होता है जो युद्ध में शत्रु के भयङ्कर प्रहार अथवा वन्य पशुओं के उग्र रोष का सामना कर सकता है किन्तु वह जीवन-संग्राम निष्फल सिद्ध होता है और उन पशुओं के रोष का सामना होने पर पराजित हो जाता है जो उसके हृदय में निवास करते हैं। भीषण युद्ध की अपेक्षा विपाद और विपत्ति

के समय शान्त रहने और दूसरों पर विजय पाने की अपेक्षा आत्म-विजय प्राप्त करने में प्रबलतर और दिव्यतर साहस की आवश्यकता होती है। और यह दिव्यतर साहस विश्वास का अनुगामी होता है। केवल पारमार्थिक श्रद्धा से (साधारणतया जिसे विश्वास ही लोग समझते हैं) कुछ काम नहीं निकल सकता। ईश्वर, अवतार वा सृष्टि के सम्बन्ध में श्रद्धा केवल ऊपरी मत है (जो मुख्यतया लोकाचार से उत्पन्न होती है) जो मनुष्य के यथार्थ जीवन के तल तक नहीं पहुंच पाती और उसमें विश्वास उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। ऐसी श्रद्धा विश्वास का अनुगमन कर सकती है, परन्तु वह उससे बिल्कुल पृथक वस्तु है। प्रायः जो लोग ईश्वर, अवतार और धर्म-ग्रन्थों में बहुत दृढ़ता से आस्था रखते हैं उनमें विश्वास का अत्यधिक अभाव होता है अर्थात् उनपर थोड़ी भी कोई छोटी मोटी आपत्ति आती है तो वे विलाप, उद्वेग और शोक करने लगते हैं। जो व्यक्ति जीवन की किन्हीं अवांछनीय घटनाओं से क्षोभ चिन्ता, निराशा और विषाद में पड़ जाते हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि उनमें धार्मिक आस्था और आध्यात्मिक ज्ञान के होते हुए भी विश्वास का अभाव है क्योंकि जहां

विश्वास है वहीं साहस है, धैर्य है, दृढ़ता है और शक्ति है।

मनुष्यों की सम्मति पर बहुत अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि वे प्रत्येक विचार-धारा के साथ परिवर्तित होती रहती हैं। पदार्थों की यथार्थता से उनका बहुत कम सम्बंध होता है, क्योंकि वे पानी के ऊपर बुलबुलों की भाँति होती हैं; किन्तु प्रत्येक सम्मति की तह में वही मानव-हृदय स्थित होता है। जो व्यक्ति दिव्य आचार से रहित होते हैं वे यदि देवी देवताओं के उपासक, धर्म-सभाओं के सदस्य और घोर आस्तिक हों तो भी वे आसुरी प्रकृति वाले, पापाचारी वा अधार्मिक होते हैं। इस के विपरीत जो दिव्य आचार के होते हैं, वे धर्म का प्रदर्शन नहीं करते तो भी दैवी प्रकृति वाले वा धार्मिक होते हैं। विषाद और शोक प्रकट करने वाले विश्वास-रहित आस्थाहीन व्यक्ति होते हैं। जो व्यक्ति दिव्य आचार की शक्ति पर विश्वास नहीं करते वा उसकी उपेक्षा करते हैं और अपनी जीवन-चर्या और कार्यों द्वारा पाप की शक्ति पर विश्वास प्रकट करते हैं वा उसे महत्व प्रदान करते हैं वे यथार्थ नास्तिक होते हैं। विश्वास वह अपूर्व

साहस प्रदान करता है जो जीवन की कठिनाइयों और क्षुद्र स्वार्थ-जनित निराशाओं को दबा देता है और विजय-पथ का अनुसरण करने के अतिरिक्त कोई पराजय नहीं स्वीकार करता; जिस में सहन शक्ति की दृढ़ता, धैर्य-पूर्वक प्रतीक्षा करने की शक्ति और युद्ध करने का उत्साह होता है; जो समस्त वस्तुओं में सत्य के उदार सिद्धान्त का अनुभव करता है और जिसे हृदय की अंतिम विजय और मस्तिष्क की महान शक्ति का पूर्ण विश्वास रहता है।

अतएव, ऐ मनुष्यो! अपने हृदय में विश्वास की ज्योति प्रज्वलित कर दो और उसकी ज्योतिर्मय किरणों से अंधकार में मार्ग का अनुसरण कर आगे बढ़ो। उसकी ज्योति निश्चय ही मन्द है, और ज्ञान-भंडार के सदृश अंशुमाली के आलोक से उसकी तुलना नहीं की जा सकती, किन्तु सन्देह के कुहासे और नैराश्य की निविड़ निशा; रुग्णता और विषाद के कँटीले और संकीर्ण मार्ग तथा प्रलोभन और अनिश्चय के विश्वासघातक स्थलों में पथ-प्रदर्शन के लिये इसकी ज्योति अवश्य यथेष्ट है।

विश्वास से मनुष्य अपने हृदय के जंगल में दहाड़ने वाले

विश्वास और साहस

दुष्ट जन्तुओं से त्राण पाने और उनका अतिक्रमण करने में समर्थ होता है और इससे उसे दिव्य जीवन के प्रशस्त क्षेत्र और विजय की पर्वतीय शिखर तक पहुंचने में सहायता मिलती है जहाँ विश्वास के धुंधले प्रकाश की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि वह सम्पूर्ण अंधकार समस्त संदेह, भ्रान्ति और संताप को पीछे छोड़कर एक नूतन चेतनामय जगत में, एक विशिष्टतर जीवन-लोक में प्रवेश करता है, और ज्ञान के पूर्ण एवं विशद आलोक में पूर्ण और शान्तिमय जीवन आचरित करता और व्यतीत करता है।

२—पौरुष और सत्यनिष्ठा

यदि कोई मनुष्य वास्तविक पुण्यात्मा बनना चाहता है तो उसके लिये पुरुषार्थी होना आवश्यक है, यदि कोई स्त्री वास्तविक पुण्यात्मा बनना चाहती है तो उस के लिये पुरुषार्थी होना आवश्यक है। नैतिक बल के बिना वास्तविक पुण्य-वृत्ति नहीं हो सकती।

विकट हास्य, छल, चाटुकारिता, असत्य व्रत और मृदु-हास्य-युक्त दम्भ—इन सब बातों को सदा के लिये विनष्ट कर दीजिये और अपने मस्तिष्क से निर्मूल कर दीजिये। पाप अत्यन्त दुर्बल हृदय, प्रभाहीन और भीरु होता है। पुण्य निश्चय रूप से दृढ़, प्रभावोत्पादक, और पराक्रमी होता है। पुरुषों और स्त्रियों को पुण्यात्मा होने के लिये, मैं उन्हें शक्तिमान, स्वतंत्र और आत्म-निर्भय होने का उपदेश देता हूं। कुछ लोग मुझे और मेरे प्रतिपादित सिद्धान्तों को बहुत अधिक गलत समझ सकते हैं। जो यह अनुमान करें कि चूंकि मैं शिष्टता, पवित्रता और धैर्य की शिक्षा देता हूं, इस लिये मैं स्त्री-सुलभ कोम-

लता अर्जित करने का उपदेश देता हूं किन्तु केवल पुरुषार्थी पुरुष और स्त्री ही उन दिव्य गुणों को ठीक रूप में समझ सकते हैं और जो व्यावहारिक नैतिक गुण और पवित्रता तथा मर्यादा की उच्च भावना के साथ साथ मध्यवृत्ति के मनुष्य को दृढ़ पाशविक वृत्ति से युक्त हों, उन व्यक्तियों से बढ़ कर कोई भी दूसरे व्यक्ति जीवन में विजयी होने के लिए श्रेष्ठतर उपकरणों से युक्त नहीं हो सकते।

जो पाशविक बल अनेक रूपों में हमारे अन्दर हिलोरें मारता रहता है और जो उत्तेजना के समय हमें अन्धा बना कर दूर ढकेल ले जाता है, जिससे हम अपनी अधिक उत्तम प्रवृत्ति को भूल जाते हैं, और अपनी पुरुषोचित मर्यादा तथा प्रतिष्ठा भी खो बैठते हैं—वही शक्ति नियंत्रित, अधिकृत और उचित रूप से प्रेरित की जाने पर हम में एक दैवी शक्ति का संचार कर सकती है जिससे हम विशुद्ध जीवन की महान से महान, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट और अधिक से अधिक उल्लासमय विजय प्राप्त कर सकते हैं।

हमें अपने अंदर के पिशाच का मर्दन करना होगा और उसे शासित कर आज्ञाकारी बनाना होगा। हमें

गौ० २

अपनी अन्तरात्मा, अपने मस्तिष्क और स्वयं का सम्राट बनना चाहिये। मनुष्य उसी समय अशक्त और पतित होता है जब वह अपनी निम्नतर वृत्तियों को उच्चतर वृत्तियों से शासित करने के स्थान पर अपने शासन की बागडोर निम्नतर वृत्तियों के हाथ में दे देता है। हमें अपनी मनोवृत्तियों को अपना स्वामी न बना कर दास और सेवक बनाना चाहिये। यदि हम उन्हें मर्यादित दशा में और भली भाँति नियंत्रित और शासित रक्खें तो वे हमारी विश्वासनीय, दृढ़ और निरापद सेवा कर सकती हैं।

मनुष्य अधम नहीं है। उसके शरीर वा मस्तिष्क का कोई अंग ऐसा नहीं जो अधम हो। प्रकृति भूल नहीं करती। विश्व की रचना सत्य के आधार पर हुई है। उस की सब क्रियायें, गुण और शक्तियाँ उत्तम हैं और उनका विवेक पूर्ण शासन बुद्धिमानी, पवित्रता, और सुख है: उनका अविवेकपूर्ण शासन मूर्खता, पाप और विपत्ति है।

मनुष्य बुरे स्वभाव, घृणा, पेटूपन, तथा अश्लील और गर्हित विनोदों में अति कर अपना संहार करता है और फिर जीवन को दोष देता है। उसे स्वयं अपने

आप को दोष देना चाहिये।

मनुष्य को किसी प्रकार अपनी प्रकृति को दोषी ठहराने की अपेक्षा अपनी मर्यादा का अधिक ध्यान रखना चाहिये। उसे अपने ऊपर सदा नियंत्रण रखना चाहिये; उत्तेजना और हड़बड़ाहट से बचना चाहिये; क्रोधावेश में आने, दूसरों के विचार वा कार्य का विरोध करने, तथा दुष्ट और झगड़ालू विरोधी से निरर्थक विवाद करने से दूर रहने के लिए उसे पर्याप्त शीलवान होना चाहिये।

शान्त, अविघ्नकर और निर्बाध मर्यादा सिद्ध और पूर्ण मानवता का मुख्य लक्षण है। हमें दूसरों की प्रतिष्ठा और अपना आदर करना चाहिये। हमें अपना मार्ग स्वयं ढूंढ़ कर उस पर दृढ़तर और अटल रह कर चलना चाहिये, किन्तु दूसरों के साथ अनधिकार हस्ताक्षेप से बचना चाहिये। सच्चे मनुष्य में विरोधी गुणों का सामंजस्य और सम्मिश्रण हो जाता है; विनयशील दया-लुता के साथ साथ निश्चल शक्ति भी होती है। वह अपनी मानवता के आधारभूत मुख्य सिद्धान्तों को परित्यक्त किये बिना अपने को भद्रता और कौशल से दूसरों के अनुकूल बना लेता है। सत्य का अंश मात्र भी परित्यक्त

करने के स्थान पर प्रसन्नता-पूर्वक मृत्यु का आलिंगन करने का अटल संकल्प रखना और साथ ही दीनों तथा मति-भ्रम शत्रुओं के साथ आश्रयप्रदायिनी विनीत सहानुभूति रखना दिव्य मानवता के साथ पुरुषोचित है।

हमें अपनी अन्तरात्मा के आदेश का सच्चाई के साथ अनुसरण करना चाहिये, और जो लोग ऐसा करते हैं, उनको अन्तरात्मा यदि हमारे मार्ग के विरुद्ध भी उन्हें प्रेरित करे, तब भी हमें उनका आदर करना चाहिये। जो व्यक्ति हमारे विरुद्ध सम्मति वा विश्वास रखते हैं उन पर तरस खाना एक अत्यधिक अपुरुषोचित वृत्ति है। यदि कोई व्यक्ति अनीश्वरवादी, मुसलमान वा ईसाई है तो उस पर हम तरस क्यों खायँ? इस लिये कि उसका मत वा विश्वास हमारे मत वा विश्वास के विपरीत है? इस तरह तरस खाना घृणा के तुल्य है। तरस खाने वा दया के पात्र दीन, दुखी और असहाय मनुष्य हैं। किसी पर दया करने का भाव प्रकट करना दया नहीं है, दया का कार्य कल्याण-कारी कर्म है। जो व्यक्ति शक्तिशाली, आत्म-निर्भर हैं और जो अपना मार्ग साहस-पूर्वक निर्दिष्ट कर दृढ़ता से उसका अनुसरण कर सकते हैं उनके लिये दया भाव प्रकट करने का भाव मिथ्याभिमान है। कोई व्यक्ति बलपूर्वक

हमारा वा दूसरे का मत क्यों अनुकरण करे? हम जो कुछ कहते वा करते हैं यदि उसे उसकी तर्क बुद्धि वा अंतरात्मा सत्य स्वीकार करे तो वह हमारा सहगामी बन जावेगा और कन्धे से कन्धा मिला कर साथ कार्य करेगा। किन्तु यदि हमारा काम उसका भी काम नहीं होता तब भी वह मनुष्य ही रह जाता है। उसके सामने उसका कर्त्तव्य है, यद्यपि वह हमारा कर्त्तव्य नहीं है। यदि हमें ऐसा आदमी मिले जिसमें आत्म-सम्मान हो और जो अपने लिये सोच सकने का साहस रखता हो तो उसे एक मनुष्य के नाते हम नमस्कार करेंगे और यह देखकर कि वह निश्चय ही हमारे विचारों को स्वीकार नहीं करता, उसके लिये अपने हृदय में घृणापूर्ण दया उत्पन्न न करेंगे।

यदि हमें नियम-बद्ध संसार में उत्तरदायी और आत्म-शासित व्यक्ति बनना है तो हमें अपनी इच्छा-शक्तियों का स्वामी बनना चाहिये और दूसरों की स्वतंत्र इच्छा-शक्ति का आदर करना चाहिये; यदि हमें शक्तिशाली और पुरुषार्थी बनना हो, तो हमें विशाल-हृदय और महत्वाकांक्षी होना चाहिये; यदि हमें जीवन की यातनाओं पर विजय पाना हो तो हमे अपनी प्रकृति की क्षुद्रता

से ऊपर उठना चाहिये।

मनुष्य अपनी दुर्बलताओं पर रोता है और हृदय की अधमता तथा मस्तिष्क के पतन पर विलाप करता है। अतएव मोक्ष का मार्ग कितना प्रशस्त है; विजय का कार्य कितना महान है! हम अपने स्वामी बनें। हम दुर्बलताओं को काट फेंकें। अवज्ञाकारी पिशाच और स्वार्थपरता को निर्मूल कर दें जिनमें सभी दुर्बलताओं और पापों का वास होता है। स्त्रियोचित और अस्वाभाविक अभिलाषाओं, अनुचित इच्छाओं का विकृत आत्मानुराग और आत्मदयार्द्रता से आक्रान्त न हों, उनको प्रश्रय न दें, प्रत्युत तुरन्त अटल निश्चय और दृढ़ता के साथ उखाड़ फेंकें। हम अपने आप को अपनी हथेली पर रक्खें। हममें तुरन्त उठ जाने वा विश्राम करने लगने का सामर्थ्य हो, हमें वस्तुओं का प्रयोग करने आना चाहिये। स्वयं उनके द्वारा प्रयुक्त न होना चाहिये। हमें न तो विलास-सामग्री का आसक्त अनुचर होना चाहिये और न आवश्यकताओं का क्रीत दास, प्रत्युत आत्म-संतुष्ट और आत्म-परिपूर्ण और प्रत्येक दशा में अपना स्वामी होना चाहिये। हमें अपनी इच्छा-शक्ति आत्म-विजय की ओर अत्यन्त और प्रेरित

करनी चाहिये जो आज्ञाकारिता, अपनी प्रकृति के नियमों की आज्ञाकारिता है। नियमों की अवज्ञा मनुष्य का सबसे प्रबल कुप्रवृत्ति और सभी पापों और दुःखों का मूल है। अपने अज्ञान के कारण वह समझता है कि वह नियमों का उल्लंघन कर विजयी हो सकता है और दूसरों की इच्छा-शक्ति को अपने आधीन कर सकता है। इस प्रकार वह अपनी शक्ति का सर्वनाश करता है। मनुष्य अपनी अवज्ञा, अज्ञानता, पाप, अहंकार और अनियमितता पर विजय प्राप्त कर सकता है, वह आत्म-विजय कर सकता है; और इसी में उसका पुरुषोचित सामर्थ्य और दिव्य शक्ति निहित है। जिस प्रकार बच्चा अपने पिता की आज्ञा समझता और उसका पालन करता है उसी तरह मनुष्य अपने जीवन के नियमों को समझ सकता है और उसका पालन कर सकता है। वह अपनी क्रियाओं और शक्तियों को स्वार्थ और लोभ का उपकरण न बना कर बल्कि विवेकपूर्वक निस्स्वार्थ सेवा में प्रयुक्त कर उन सब का छत्रधारी सम्राट बन सकता है। कोई ऐसी कुप्रवृत्ति नहीं जिसे मनुष्य निर्मूल न कर सकता हो, कोई ऐसा पाप नहीं जिसका वह दमन न कर सकता हो, कोई ऐसी विपत्ति नहीं जिसे वह न जान सकता हो और

जिस पर विजय न प्राप्त कर सकता हो। "अतएव हमें अपना मूल्य समझना चाहिये और पदार्थों को अपने पैरों के तले रखना चाहिये। इस विश्व में, जो हमारे लिये ही विद्यमान है, हमें अनाथ, भिक्षु बालक वा अनधिकारी आगंतुक की भाँति सशंकित चित्त झाँकना, छिपना वा इधर उधर मुँह चुराना नहीं चाहिये।"

पुरुषोचित आत्म-निर्भरता और दिव्य विनम्रता एक दूसरे के अनुकूल ही गुण नहीं हैं, प्रत्युत एक दूसरे के सहायक भी हैं। मनुष्य जब दूसरों का अधिकार छीनता है तभी उद्धत और अभिमानी हो जाता है। वह अपने ऊपर अत्यधिक नियंत्रण रखने का न तो दावा कर सकता है और न रख सकता है। दृढ़ आत्म-नियमन और दूसरों के प्रति सौम्य विचार के संयोग से सच्चा पुरुषार्थी मनुष्य बनता है।

प्रारम्भतः, मनुष्य को ईमानदार, निष्कपट और सत्यनिष्ट होना चाहिये। कपट अत्यन्त जघन्य मूर्खता है। धूर्तता संसार में सबसे निकृष्ट वस्तु है। दूसरों को ठगने का प्रयत्न करने पर मनुष्य सबसे अधिक स्वयं ठगा जाता है। मनुष्य को धूर्तता, नीचता और कपट से इतना दूर रहना चाहिये कि वह सामने चेहरा कर बिना हिचकिचाहट के,

बिना झेपें और सकुचाए, अविचल दृष्टि से दूसरों के सामने दृष्टि से दृष्टि मिला कर निस्संकोच देख सके। सत्यनिष्ठा के बिना मनुष्य खोखले बुरक़े की तरह है और जो कुछ कार्य करने का वह उद्योग करता है वह निर्जीव और निष्फल होगा। खोखले ढोल में से सिर्फ खोखलेपन की आवाज़ आ सकती है; और असत्यनिष्ठा से भी कोरी बातों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

बहुत से मनुष्य जान बूझ कर धूर्त नहीं होते, फिर भी अविचार-पूर्वक छोटी छोटी असत्यनिष्ठाओं से आक्रान्त हो जाते हैं जो उनके सुख को कम करती हैं और उनके चरित्र की नैतिक भित्ति को विनष्ट करती हैं। ऐसे व्यक्तियों में से अधिकांश नियमित रूप से अपने उपासना-गृहों में जाते हैं और नित्य, सतत, विशुद्ध हृदय और पवित्र जीवन के लिये आराधना करते रहते हैं, फिर भी उपासना-गृह से लौटते ही किसी शत्रु की निन्दा करने में लग जाते हैं। वा इससे भी निकृष्टतर, किसी अनुपस्थित ऐसे मित्र का उपहास वा छिद्रान्वेषण करने लगते हैं जिससे मिलने पर वे मुख से हँसते हुए मधुर वचन ही निकालेंगे। इसमें सबसे बड़े दुख की बात यह है कि वे अपनी असत्यनिष्ठा से बिल्कुल अज्ञान रहते हैं, और जब

उनके मित्र उनका साथ छोड़ देते हैं, तो वे मनुष्य संसार और उन मनुष्यों के खोखलेपन और विश्वासघात का रोना रोते हैं और विलाप करते हुए कहते हैं कि संसार में सच्चे मित्रों का अभाव है।

सचमुच, ऐसे लोगों के लिये अविचल मैत्री कहीं नहीं है, क्योंकि असत्यनिष्ठा का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने पर भी अनुभव अवश्य हो जाता है, और जो लोग दूसरों की सच्चाई और विश्वास पर आस्था नहीं रखते वे दूसरों को विश्वासपात्र नहीं बना सकते। दूसरों के प्रति सच्चाई का व्यवहार कीजिये। फलतः दूसरे भी आप के साथ सचाई का व्यवहार करेंगे। किसी शत्रु का कल्याण मनाइए और अनुपस्थित मित्र की प्रशंसा कीजिये। यदि मानव-प्रकृति पर से आप का विश्वास उठ गया है तो पता लगाइए कि आप स्वयं कहाँ पथ-भ्रष्ट हो गए हैं।

चीन के प्रसिद्ध महात्मा कनफ्यूशियन के बताये नीति शास्त्र में सत्यनिष्ठा "पंचमहाव्रतों" में से एक है। उसने इसके विषय में इस प्रकार लिखा है, "सत्यनिष्ठा ही हमारे जीवन को गौरव प्रदान करती है; इसके बिना हम लोगों के सर्वोत्कृष्ट कार्य निरर्थक हैं; दिखावटी धर्मात्मा निरे धूर्त होते हैं; प्रखर ज्योति, जो अपने तेज से

आँखों को चकाचौंध कर देती है, एक साधारण धुँधला प्रकाश है जो मनोविकार के मामूली झोंके से लुप्त हो सकती है।

विशुद्ध मस्तिष्क होने के लिये, हमें आत्मवंचना से अवश्य छुटकारा पाना होगा– हमें पाप से वैसे ही घृणा करना होगा जैसे हम दुर्द से दूर भागते हैं और पुण्य से प्रेम करना होगा जैसे हम सुन्दर वस्तुओं को अपनाते हैं। इसके बिना मनुष्य में आत्म-सम्मान का भाव नहीं आ सकता और इसी कारण उत्कृष्ट श्रेणी के पुरुषों को एकान्त के समय अपनी रक्षा करनी चाहिये।

कुपात्र व्यक्ति अपने अवकाश के समय को गुप्त रूप से दुष्टता के कार्यों में व्यतीत करता है, और उसकी दुष्टता का कहीं अन्त नहीं होता। पुण्यात्मा व्यक्ति के सामने वह कपट करता है और अपने अवगुणों को छिपा कर केवल गुण ही सामने रखता है। किन्तु जब प्रथम अनुसंधान में उसका वास्तविक चरित्र प्रकट हो जाता है तो वह फिर छद्मवेश कैसे धारण कर सकता है?

"कहा जाता है कि जिन व्यक्तियों पर अनेक मनुष्यों की आँख लगी रहती है और जिन की ओर अनेक लोग हाथ उठा कर संकेत किया करते हैं उन कीर्तिशाली

महान पुरुषों पर जनता की दृष्टि का बड़ा नियंत्रण रहता है; अतएव ऐसे सज्जनों को एकान्त में ही बहुत अधिक सावधान रहने की आवश्यकता होती है।"

अतएव सज्जन पुरुष कोई काम ऐसा नहीं करते कोई ऐसी बात मुँह से नहीं निकालते जो लोगों में फैले तो उन्हें लज्जित होना पड़े। अपने अन्तःकरण की सज्जनता के कारण वे दूसरों के बीच निर्भय और निश्चिंत हो कर रहते हैं। उनकी उपस्थिति दृढ़ रक्षा का उपकरण होती है और उनके वचन सत्य होने के कारण निश्चल और प्रभावशाली होते हैं। वे जो भी कार्य करें, उसमें सफलता मिलती है। यह सम्भव है कि उनकी बातें सब को श्रुति-मधुर न मालूम हों, परन्तु वे सब को हृदयग्राही होती हैं; लोग उनका अनुसरण करते हैं, उनका विश्वास करते हैं और उनका आदर करते हैं।

साहस, आत्म-निर्भरता, सत्यनिष्ठा, उदारता, और दयालुता ये ही गुण हैं जिनसे दृढ़ पुरुषत्व का निर्माण होता है; इनके बिना पुरुष परिस्थितियों का दास, मिट्टी का पुतला है, एक अशक्त, अनिश्चित पदार्थ है जो निर्मल जीवन के आनन्द और मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रत्येक युवा पुरुष को इन गुणों को ग्रहण करना चाहिये।

यदि यह उनको ग्रहण करने में सफल होता है तो वह आत्म-विजय के लिये निश्चय सन्नद्ध हो सकता है।

मैं भूमंडल में पुरुषों और स्त्रियों की एक नवीन उत्कृष्ट श्रेणी उत्पन्न होने की भविष्यवाणी करता हूं-पुरुष जो यथार्थ में पुरुष, शक्तिशाली निश्छल और सज्जन होंगे क्रोध, पाप, विरोध और घृणा से ग्रस्त न हो सकने के लिए उनमें विवेक होगा- स्त्रियां जो यथार्थ में स्त्रियां विनम्र,-सत्यपरायण और पवित्र होंगी; निरर्थक प्रलाप, चुगली और छल-कपट से वंचित रहने के लिये उनमें वुद्धि होगी; और उनकी कोख से ही आगे उन्हीं की भाँति उत्कृष्ट श्रेणी की आदर्श संतान उत्पन्न होगी; उनके सम्मुख पाप और भ्रान्ति के दुष्ट पिशाच विनष्ट हो जायेंगे वे भूमंडल का पुनरुत्थान करेंगे; वे मानव-जाति को प्रेम, आनन्द और शान्ति का पाठ पढ़ा कर प्रकृति का अनुगमन कर मनुष्य को गौरवान्वित करेंगे; तभी भूमंडल में पाप और संताप पर विजयी जीवन का प्रभुत्व स्थापित होगा।

३—शक्ति और सामर्थ्य

सार्वभौमिक शक्ति कितनी अद्भुत है! सतत अक्लान्त, अक्षय, और अपनी क्रिया में व्यक्त रूप से अनन्त, यह अपनी अविश्रान्त, देदीप्यमान स्पंदित समृद्धि के साथ समय के क्षणिक रूपों को व्यंजित करती हुई परमाणुओं से लेकर तारा तक में प्रवाहित होती है।

मनुष्य इसी सृजन-शक्ति का एक अंश है और यह शक्ति स्नेह, वासना, प्रज्ञा, आचरण, तर्क-बुद्धि, ज्ञान-शक्ति और विवेक आदि मानसिक शक्तियों के संयोग द्वारा उसमें व्यक्त होती है। मनुष्य इस शक्ति का नेत्रहीन वाहक मात्र नहीं, प्रत्युत वह चेतनापूर्वक उसका उपयोग करता है, नियंत्रण करता है और निर्देश करता है। धीरे धीरे किन्तु निश्चय रूप से वह बाह्य शक्तियों पर अधिकार पाता जा रहा है, और उनसे बलपूर्वक अभीष्ट सेवा कार्य कराता जा रहा है; और ठीक इसी प्रकार निश्चय रूप से वह आन्तरिक शक्तियों-विचार की सूक्ष्म शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेगा और सुख, शान्ति के मार्गों की ओर उन्हें प्रेरित करता रहेगा।

सृष्टि में मनुष्य का वास्तविक स्थान दास का नहीं, सम्राट का है, पाप के राज्य में असहाय कठपुतली का

नहीं, प्रत्युत पुण्य-लोक के नियमाधीन सेनापति का है। अपने शरीर और मस्तिष्क के दोहरे राज्य पर उसे सत्य का अधिष्ठाता, अपना स्वामी और अपनी पवित्र, अनंत सृजन-शक्ति के भंडार का चतुर उपभोक्ता और नियंता बन कर शासन करना है। वह निष्कलंक, शक्तिमान, पराक्रमी, विनम्र और उदार रहकर भूमंडल में विचरण करे; अपनी तुच्छता के भ्रम में अवसन्न न हो कर पूर्ण पुरुषत्व की मर्यादा के साथ गर्दन सीधी कर चले; स्वार्थपरता और ग्लानि में धराशायी हो कर, क्षमा और दया के लिये विलाप करता हुआ नहीं, बल्कि निर्मल जीवन की महान विभूति सहित मुक्त और अविचल खड़े हो कर विचरण करे।

चिरकाल से मनुष्य अपने को अधम, निर्बल, और अयोग्य समझता आ रहा है और इसी प्रकार रहने में वह सन्तुष्ट रहता आया है; किन्तु इस नवयुग में, जिसका पदार्पण संसार में अभी हुआ है, उसे यह महान अनुसंधान करना है कि केवल ऊँचे उठने और आकांक्षा होने पर ही उसका जीवन निर्मल, महत्वशाली और आदर्श है; और ऊंचे उठना किसी बाह्य शत्रु, पड़ोसी, शासनों कानूनों, प्रेतों, वा साम्राज्यों अथवा शक्तियों से न होगा

बल्कि अपनी ही अज्ञानता, मूर्खता और उद्विग्नता से होगा जो कि उसी के मानसिक जगत में अवस्थित रह कर उसे व्याकुल किये रहती हैं। क्योंकि मनुष्य अपनी अज्ञानता और मूर्खता से ही दासता की शृंखला में बंधा रहता है: और ज्ञान तथा विवेक से उसका शासनाधिकार पुनः स्थापित होता है।

जिनकी इच्छा हो वे मनुष्य की दुर्बलता और अशक्तता का प्रचार करें, परन्तु मैं उसको शक्ति और सामर्थ्य का ही उपदेश करूंगा। मैं पुरुषों के लिए लिख रहा हूं, बच्चों के लिए नहीं; उनके लिए लिख रहा हूं जो सीखने के लिए उत्सुक और विजय-लाभ के लिए कटिबद्ध होंगे जो (लोकोपकार के लिए) क्षुद्र व्यक्तिगत व्यसनों, स्वार्थ-भावना, और, अधम विचार को तिलांजलि दे सकेंगे तथा निर्लिप्त रह कर, निरुद्वेग और परितापहीन जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

नगण्य और अविचारवान व्यक्ति के लिये सत्य प्राप्त नहीं है: तुच्छ और आवारा व्यक्तियों के लिये जीवन-विजय साध्य नहीं है।

मनुष्य विधाता है। यदि वह नहीं होता तो प्रकृति के नियमों का उल्लंघन कर नहीं चल सकता था, क्योंकि

जिसे दुर्बलता कहा जाता है वह शक्ति का परिचायक है; उसका पाप उसकी पुण्य-वृत्ति धारण-शक्ति का विलोम है। क्योंकि उसकी दुर्बलता और पाप विपरीत दिशा में प्रवर्तित शक्ति और कुमार्ग में प्रयुक्त सामर्थ्य के अतिरिक्त क्या है? इस भाव में पापी शक्तिमान होता है, दुर्बल नहीं; किन्तु वह अज्ञान होता है और उचित के स्थान अनुचित मार्ग में, प्रकृति के नियमों के अनुकूल की जगह विपरीत, अपनी शक्ति प्रयुक्त करता है। दुख कुपथ-प्रवृत्त शक्ति का परिणाम मात्र है। दुष्ट व्यक्ति अपने आचरण के विपर्यय से ही सज्जन हो जाता है। यदि आप अपने पापों पर विलाप कर रहे हैं तो उन पापों को तिलांजलि दे अपने को उन पापों के विलोम पुण्य-कार्यों में प्रवृत्त कीजिये। इस प्रकार दुर्बलता सामर्थ्य में, अशक्तता शक्ति में, और विपदा सम्पदा में परिवर्तित हो जाती है। अपनी शक्तियों को पुरातन पाप मार्ग से मुक्त कर पुण्य के नूतन मार्ग में प्रवृत्त कर देने से पापी व्यक्ति महात्मा हो जाता है।

सार्वलौकिक शक्ति यद्यपि अनन्त हो सकती है तथापि विशेष रूपों में इसका समाहार अत्यंत सीमित होता है। मनुष्य में कुछ निश्चित राशि की शक्ति होती है, वह उस शक्ति का दुरुपयोग वा सदुपयोग कर

कर्षक भोग विलास तथा जीवन के किसी मुख्य ध्येय में सहायक न होने वाले सभी कार्यों का परित्याग अवश्य ही करना चाहिये। वह इस बात पर अपना ध्यान आकर्षित करता है कि दुरूह जीवन-यात्रा के लिए शक्ति और समय बहुत ही सीमित है अतएव वह समय का सदुपयोग कर उसके अपव्यय से बचता है और अपनी शक्तियों को केन्द्रीभूत करता है।

मूर्ख व्यक्ति आमोद-प्रमोद, भोगविलास और मिथ्या प्रलाप, घृणित विचार, व्यसन के प्रचंड उद्वेग, निरर्थक विवाद, और असंगत आक्षेप में अपनी शक्तियों का अपव्यय करते हैं; और फिर रोना रोते हैं कि सार्थक, सफल या महत्वपूर्ण जीवन के लिये उसकी अपेक्षा अन्य बहुत से लोगों के सम्मुख सौभाग्यवश विशेष साधन प्रस्तुत हैं। इस प्रकार सोच कर वे उन प्रतिष्ठित पड़ोसियों से ईर्ष्या करते हैं जो कर्तव्य के आगे स्वार्थ का त्याग करते हैं और अपने जीवन-व्यापार को भली भाँति पूर्ण करने में अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का उपयोग करते हैं। "जो व्यक्ति न्याय-परायण, सत्यभाषी, और कर्त्तव्य-परायण होता है, वह सर्वप्रिय होता है।" जो व्यक्ति अपने कर्तव्य की ही चिन्ता करता है, और अपने जीवन-व्यापार को सम्यक्

जिसे दुर्बलता कहा जाता है वह शक्ति का परिचायक है ; उसका पाप उसकी पुण्य-वृत्ति धारण-शक्ति का विलोम है। क्योंकि उसकी दुर्बलता और पाप विपरीत दिशा में प्रवर्तित शक्ति और कुमार्ग में प्रयुक्त सामर्थ्य के अतिरिक्त क्या है? इस भाव में पापी शक्तिमान होता है , दुर्बल नहीं; किन्तु वह अज्ञान होता है और उचित के स्थान अनुचित मार्ग में, प्रकृति के नियमों के अनुकूल की जगह विपरीत, अपनी शक्ति प्रयुक्त करता है। दुख कुपथ-प्रवृत्त शक्ति का परिणाम मात्र है। दुष्ट व्यक्ति अपने आचरण के विपर्यय से ही सज्जन हो जाता है। यदि आप अपने पापों पर विलाप कर रहे हैं तो उन पापों को तिलांजलि दे अपने को उन पापों के विलोम पुण्य-कार्यों में प्रवृत्त कीजिये। इस प्रकार दुर्बलता सामर्थ्य में, अशक्तता शक्ति में, और विपदा सम्पदा में परिवर्तित हो जाती है। अपनी शक्तियों को पुरातन पाप मार्ग से मुक्त कर पुण्य के नूतन मार्ग में प्रवृत्त कर देने से पापी व्यक्ति महात्मा हो जाता है।

सार्वलौकिक शक्ति यद्यपि अनन्त हो सकती है तथापि विशेष रूपों में इसका समाहार अत्यंत सीमित होता है। मनुष्य में कुछ निश्चित राशि की शक्ति होती है, वह उस शक्ति का दुरुपयोग वा सदुपयोग कर

कर्षक भोग विलास तथा जीवन के किसी मुख्य ध्येय में सहायक न होने वाले सभी कार्यों का परित्याग अवश्य ही करना चाहिये। वह इस बात पर अपना ध्यान आकर्षित करता है कि दुरूह जीवन-यात्रा के लिए शक्ति और समय बहुत ही सीमित है अतएव वह समय का सदुपयोग कर उसके अपव्यय से बचता है और अपनी शक्तियों को केन्द्रीभूत करता है।

मूर्ख व्यक्ति आमोद-प्रमोद, भोगविलास और मिथ्या प्रलाप, घृणित विचार, व्यसन के प्रचंड उद्वेग, निरर्थक विवाद, और असंगत आक्षेप में अपनी शक्तियों का अपव्यय करते हैं; और फिर रोना रोते हैं कि सार्थक, सफल वा महत्वपूर्ण जीवन के लिये उसकी अपेक्षा अन्य बहुत से लोगों के सम्मुख सौभाग्यवश विशेष साधन प्रस्तुत हैं। इस प्रकार सोच कर वे उन प्रतिष्ठित पड़ोसियों से ईर्ष्या करते हैं जो कर्तव्य के आगे स्वार्थ का त्याग करते हैं और अपने जीवन-व्यापार को भली भाँति पूर्ण करने में अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का उपयोग करते हैं। "जो व्यक्ति न्याय-परायण, सत्यभाषी, और कर्तव्य-परायण होता है, वह सर्वप्रिय होता है।" जो व्यक्ति अपने कर्तव्य की ही चिन्ता करता है, और अपने जीवन-व्यापार को सम्यक

रूप से सम्पन्न करने के लिये अपने सम्पूर्ण गुणों और शक्तियों का उपयोग करते हैं और दूसरों के कार्यों में हस्ताक्षेप और छिद्रान्वेषण करने में प्रवृत्त नहीं होते उनका जीवन सरल, महत्वपूर्ण और आनन्दमय होता है।

संसार सुकृति और बल से आच्छादित है और यह सुकृती और बलशाली व्यक्तियों की रक्षा करता है। दुष्कृति और दुर्बलता आत्मघातक होती हैं। शक्ति का अपव्यय विनाश है। प्रकृति बल की पुजारिणी है। "योग्यतम की विजय" के सिद्धान्त में कोई दोष नहीं जान पड़ता। यह प्राकृतिक और आध्यात्मिक दोनों सिद्धान्त है। पशुओं की दृढ़तर प्रकृति ही प्राणियों की उच्चतर श्रेणी के विकास में अत्यधिक उपयोगी होती है। मनुष्य के उत्कृष्टतर नैतिक गुण उसको ऊंचा उठाने वाले होते हैं। मनुष्य में उनकी प्रधानता होती है और वे निकृष्ट वृत्तियों का शमन कर देते हैं। यह बिल्कुल निश्चित है कि जो अपनी अधम वृत्तियों को प्रधानता देता है वह विनाश आमंत्रित करता है और वाह्य-जगत के जीवन-युद्ध वा अंतर्जगत के सद् वृत्ति के समर में जीवित नहीं रहता। निकृष्टतर वा अधम को जीवन प्रदान करने में उत्कृष्टतर वा उत्तम के जीवन का लोप होता है; और निकृष्टतर को प्रदत्त जीवन भी

का पाठ पढ़ना चाहते हैं तो आप को श्रेष्ठ मार्ग ज्ञात होगा। आप कार्यारम्भ के पूर्व भली भाँति विचार कर लीजिए परन्तु कार्य प्रारम्भ कर लेने पर हिचकिचाहट में न पड़िए। काम, क्रोध, हठ और लोभ चारों मनोविकारों से दूर रहिए। क्रोधी व्यक्ति दुर्बल होता है। मदोन्मत्त, हठी व्यक्ति जो दूसरों का उपदेश नहीं सुनना चाहता और अपने मार्ग में सुधार करने की बात नहीं सुनता, मूर्ख होता है। वह मूर्खता में ही वृद्ध भी हो जाता है, और उसके सफेद बाल भी लोगों के हृदय में आदर और प्रतिष्ठा का भाव नहीं उत्पन्न करते। कामी, विषयासक्त व्यक्ति में विषय, भोग के लिए ही शक्ति होती है और पुरुषत्व तथा आत्म-सम्मान के लिए उसमें शक्ति का अभाव होता है। लोभी व्यक्ति मानव-प्रकृति की श्रेष्ठता और दिव्य जीवन की महत्ता से अनभिज्ञ होता है; वह स्वर्गीय सुख और आनन्द के स्थान पर नारकीय यातनाओं को प्रश्रय देने में अपनी शक्तियाँ नष्ट करता है।

आप की शक्ति आप के साथ है; और आप इन का उपयोग अपना अधः पतन या उत्कर्ष करने में कर सकते हैं। आप स्वार्थपरता में इन का अपव्यय कर सकते हैं या सुकर्म में सदुपयोग। एक ही शक्ति आप को देवता या पशु

रूप से सम्पन्न करने के लिये अपने सम्पूर्ण गुणों और शक्तियों का उपयोग करते हैं और दूसरों के कार्यों में हस्ता-क्षेप और छिद्रान्वेषण करने में प्रवृत्त नहीं होते उनका जीवन सरल, महत्वपूर्ण और आनन्दमय होता है।

संसार सुकृति और बल से आच्छादित है और यह सुकृती और बलशाली व्यक्तियों की रक्षा करता है। दुष्कृति और दुर्बलता आत्मघातक होती हैं। शक्ति का अपव्यय विनाश है। प्रकृति बल की पुजारिणी है। "योग्यतम की विजय" के सिद्धान्त में कोई दोष नहीं जान पड़ता। यह प्राकृतिक और आध्यात्मिक दोनों सिद्धान्त है। पशुओं की दृढ़तर प्रकृति ही प्राणियों की उच्चतर श्रेणी के विकास में अत्यधिक उपयोगी होती है। मनुष्य के उत्कृष्टतर नैतिक गुण उसको ऊंचा उठाने वाले होते हैं। मनुष्य में उनकी प्रधानता होती है और वे निकृष्ट वृत्तियों का शमन कर देते हैं। यह बिल्कुल निश्चित है कि जो अपनी अधम वृत्तियों को प्रधानता देता है वह विनाश आमंत्रित करता है और वाह्य-जगत के जीवन-युद्ध वा अंतर्जगत के सद् वृत्ति के समर में जीवित नहीं रहता। निकृष्टतर वा अधम को जीवन प्रदान करने में उत्कृष्टतर वा उत्तम के जीवन का लोप होता है; और निकृष्टतर को प्रदत्त जीवन भी

का पाठ पढ़ना चाहते हैं तो आप को श्रेष्ठ मार्ग ज्ञात होगा। आप कार्यारम्भ के पूर्व भली भाँति विचार कर लीजिए परन्तु कार्य आरम्भ कर लेने पर हिचकिचाहट में न पड़िए। काम, क्रोध, हठ और लोभ चारों मनोविकारों से दूर रहिए। क्रोधी व्यक्ति दुर्बल होता है। मदोन्मत्त, हठी व्यक्ति जो दूसरों का उपदेश नहीं सुनना चाहता और अपने मार्ग में सुधार करने की बात नहीं सुनता, मूर्ख होता है। वह मूर्खता में ही वृद्ध भी हो जाता है, और उसके सफेद बाल भी लोगों के हृदय में आदर और प्रतिष्ठा का भाव नहीं उत्पन्न करते। कामी, विषयासक्त व्यक्ति में विषय, भोग के लिए ही शक्ति होती है और पुरुषत्व तथा आत्म-सन्मान के लिए उसमें शक्ति का अभाव होता है। लोभी व्यक्ति मानव-प्रकृति की श्रेष्ठता और दिव्य जीवन की महत्ता से अनभिज्ञ होता है; वह स्वर्गीय सुख और आनन्द के स्थान पर नारकीय यातनाओं को प्रश्रय देने में अपनी शक्तियाँ नष्ट करता है।

आप की शक्ति आप के साथ है; और आप इस का उपयोग अपना अतः पतन या उत्कर्ष करने में कर सकते हैं। आप स्वार्थपरता में इस का अपव्यय कर सकते हैं या सुयोग में सदुपयोग। एक ही शक्ति आप को देवता या पशु

बनने में समर्थ कर सकती है। जिस मार्ग में आप इसे लगाएँगे वैसा ही इसका परिणाम होगा। यह कभी मत सोचिए कि "मेरा मस्तिष्क निर्बल है" बल्कि अपनी मानसिक शक्तियों का पुनर्निर्देश कर निर्बलता को सबलता में और शक्ति को सामर्थ्य में परिवर्तित कीजिए। अपने विचारों को श्रेष्ठ मार्गों में प्रवृत्त कीजिए। निरर्थक आकांक्षाओं और मूर्खतापूर्ण परितापों को दूर कीजिए; उपालंभ और आत्मक्षोभ का प्रतिकार कीजिए तथा कुवृत्ति का मोह छोड़िए। अपनी दृष्टि को ऊँचा उठाइए। अपनी दिव्य शक्ति का उदय कीजिए और अपने मस्तिष्क तथा जीवन से सभी दुर्बलता और अधमता का परिष्कार कीजिए। श्रृंखलाबद्ध दास का अधम जीवन न व्यतीत कीजिए, प्रत्युत विजयी अधिपति का दिव्य जीवन व्यतीत कीजिए।

ॐ · Rere ·

की भाँति साथ लिए जाता है। जो व्यक्ति अपना नियन्त्रण नहीं करता वह अपनी कुवृत्तियों, अपनी परिस्थितियों और अपने भाग्य द्वारा स्वयं नियन्त्रित होता है; और जब वह तत्काल के लालसा की पूर्ति नहीं कर पाता तो वह निराश और दुखी हो जाता है। वह अपने क्षणिक सुख के लिए बाह्य वस्तुओं पर अवलम्बित रहता है।

संसार में कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो विनष्ट वा विलुप्त हो सके। शक्ति का रूपान्तर हो जाता है, परन्तु विनाश नहीं। पुरानी और निकृष्ट वृत्तियों का द्वार बन्द करने का अर्थ नवीन और उत्कृष्ट वृत्तियों का द्वार खोलना है। परित्याग के बाद ही पुनरुद्धार होता है। प्रत्येक विषयासक्ति, प्रत्येक गर्हित विलास तथा प्रत्येक घृणित विचार परित्यक्त किए जाने पर किसी अधिक निर्मल और निरन्तर सुन्दर वस्तु के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जहाँ दुर्बलता से उत्पन्न आवेश का निरोध किया जाता है वहाँ अभिनव आनन्द की उत्पत्ति होती है। बीज के आत्मोत्सर्ग से फलाच्छादित और पल्लवित वृक्ष का संसार में उदय होता है।

कायापलट निश्चय ही तात्कालिक नहीं होता और न परिवर्तन अचानक तथा कौतुकपूर्ण कार्य ही है। प्रकृति

बनने में समर्थ कर सकती है। जिस मार्ग में आप इसे लगाएँगे वैसा ही इसका परिणाम होगा! यह कभी मत सोचिए कि "मेरा मस्तिष्क निर्बल है" बल्कि अपनी मानसिक शक्तियों का पुनर्निर्देश कर निर्बलता को सबलता में और शक्ति को सामर्थ्य में परिवर्तित कीजिए। अपने विचारों को श्रेष्ठ मार्गों में प्रवृत्त कीजिए। निरर्थक आकांक्षाओं और मूर्खतापूर्ण परितापों को दूर कीजिए; उपालंभ और आत्मक्षोभ का प्रतिकार कीजिए तथा कुवृत्ति का मोह छोड़िए। अपनी दृष्टि को ऊँचा उठाइए। अपनी दिव्य शक्ति का उदय कीजिए और अपने मस्तिष्क तथा जीवन से सभी दुर्बलता और अधमता का परिष्कार कीजिए। शृंखलाबद्ध दास का अधम जीवन न व्यतीत कीजिए, प्रत्युत विजयी अधिपति का दिव्य जीवन व्यतीत कीजिए।

की भाँति साथ लिए जाता है। जो व्यक्ति अपना नियन्त्रण नहीं करता वह अपनी कुवृत्तियों, अपनी परिस्थितियों और अपने भाग्य द्वारा स्वयं नियन्त्रित होता है; और जब वह तत्काल के लालसा की पूर्ति नहीं कर पाता तो वह निराश और दुखी हो जाता है। वह अपने क्षणिक सुख के लिए वाह्य वस्तुओं पर अवलम्बित रहता है।

संसार में कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो विनष्ट वा विलुप्त हो सके। शक्ति का रूपान्तर हो जाता है, परन्तु विनाश नहीं। पुरानी और निकृष्ट वृत्तियों का द्वार बन्द करने का अर्थ नवीन और उत्कृष्ट वृत्तियों का द्वार खोलना है। परित्याग के बाद ही पुनरुद्धार होता है। प्रत्येक विषयासक्ति, प्रत्येक गर्हित विलास तथा प्रत्येक घृणित विचार परित्यक्त किए जाने पर किसी अधिक निर्मल और निरन्तर सुन्दर वस्तु के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जहाँ दुर्बलता से उत्पन्न आवेश का निरोध किया जाता है वहाँ अभिनव आनन्द की उत्पत्ति होती है। बीज के आत्मोत्सर्ग से फलाच्छादित और पल्लवित वृक्ष का संसार में उदय होता है।

कायापलट निश्चय ही तात्कालिक नहीं होता और न परिवर्तन सरलतर तथा शीघ्रसाध्य कार्य ही है। प्रकृति

उन्नति के लिए उद्योग और धैर्य चाहती है। विजय-यात्रा में प्रत्येक विजय के लिए संघर्ष और क्लेश का सामना करने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु विजय प्राप्त हो जाती है और यह स्थिर हो जाती है। संघर्ष समाप्त हो जाता है और क्लेश क्षणस्थायी होता है। दृढ़ रूप से जड़ बनाए हुए स्वभाव को हटाने, अधिक समय के अभ्यास से घर किए हुई किसी मानसिक वृत्ति को तोड़ने और अपने में किसी सुन्दर स्वभाव वा विशद गुण की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए बल पूर्वक उद्योग करने में दुखावह घोर परिवर्तन की आवश्यकता होती है और एक अंधकारमय संक्रान्ति-काल का सामना करना पड़ता है जिसको पार करने के लिये धैर्य और संतोष की आवश्यकता होती है; यहीं पर मनुष्य असफल होता है; यहीं पर मनुष्य पथ-भ्रष्ट होकर अपनी पुरानी, अनायास पाशविक प्रवृत्ति से ग्रसित हो जाता है और आत्म-संयम को अत्यधिक परिश्रम-साध्य और दुष्कर समझ कर तिलांजलि दे देता है। इस कारण वह स्थायी आनन्द का अधिकारी नहीं हो पाता और पाप का निराकरण कर विजयी होने वाला जीवन उसकी दृष्टि से विलीन हो जाता है।

मनुष्य स्थायी सुख का अनुसंधान अपव्यय, आवेश

प्रतीक्षा करता है। घृणा, अधीरता, लोभ, विषयासक्ति, निरर्थक और विवेकहीन इच्छा आदि दुर्गुण, जिनकी सहायता से मनुष्य अपने विकृत रूप की रचना करता है–कितने भद्दे उपकरण हैं और वे लोग कितने अज्ञानी और अकुशल हैं जो इनका उपयोग करते हैं! प्रेम, धैर्य, दया, आत्म-नियमन, विशुद्ध आकांक्षा और पवित्र इच्छाएँ–सत्य के उपकरण जिनसे विमल जीवन का निर्माण होता है, कितने सुन्दर उपकरण हैं और वे लोग कितने चतुर और कुशल हैं जो इनका उपयोग करते हैं!

अत्यधिक उतावलेपन और स्वार्थपरायणता से जो कुछ उपलब्ध होता है वह शान्ति और त्याग से पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। प्रकृति से उतावलापन नहीं कराया जा सकता। वह यथासमय और ऋतु में ही सब वस्तुओं को पूर्ण करती है। सत्य किसी का अनुवर्ती नहीं हो सकता उसकी शर्तें होती हैं और उनका पालन अवश्य करना पड़ता है। उतावलेपन और क्रोध से बढ़ कर कोई वस्तु बेकार नहीं होती मनुष्य को यह ज्ञात करना पड़ता है कि वह संसार पर नियंत्रण नहीं कर सकता, बल्कि वह स्वयं पर नियंत्रण कर सकता, है: वह दूसरों की इच्छाओं का दमन नहीं कर सकता बल्कि अपनी ही इच्छा को परि-

उन्नति के लिए उद्योग और धैर्य चाहती है। विजय-यात्रा में प्रत्येक विजय के लिए संघर्ष और क्लेश का सामना करने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु विजय प्राप्त हो जाती है और यह स्थिर हो जाती है। संघर्ष समाप्त हो जाता है और क्लेश क्षणस्थायी होता है। दृढ़ रूप से जड़ बनाए हुए स्वभाव को हटाने, अधिक समय के अभ्यास से घर किए हुई किसी मानसिक वृत्ति को तोड़ने और अपने में किसी सुन्दर स्वभाव वा विशद गुण की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए बल पूर्वक उद्योग करने में दुखावह घोर परिवर्तन की आवश्यकता होती है और एक अंधकारमय संक्रान्ति-काल का सामना करना पड़ता है जिसको पार करने के लिये धैर्य और संतोष की आवश्यकता होती है; यहीं पर मनुष्य असफल होता है; यहीं पर मनुष्य पथ-भ्रष्ट होकर अपनी पुरानी, अनायास पाशविक प्रवृत्ति से ग्रसित हो जाता है और आत्म-संयम को अत्यधिक परिश्रम-साध्य और दुष्कर समझ कर तिलांजलि दे देता है। इस कारण वह स्थायी आनन्द का अधिकारी नहीं हो पाता और पाप का निराकरण कर विजयी होने वाला जीवन उसकी दृष्टि से विलीन हो जाता है।

मनुष्य स्थायी सुख का अनुसंधान अपव्यय, आवेश

प्रतीक्षा करता है। घृणा, अधीरता, लोभ, विषयासक्ति, निरर्थक और विवेकहीन इच्छा आदि दुर्गुण, जिनकी सहायता से मनुष्य अपने विकृत रूप की रचना करता है- कितने भद्दे उपकरण हैं और वे लोग कितने अज्ञानी और अकुशल हैं जो इनका उपयोग करते हैं! प्रेम, धैर्य, दया, आत्म-नियमन, विशुद्ध आकांक्षा और पवित्र इच्छाएँ- सत्य के उपकरण जिनसे विमल जीवन का निर्माण होता है, कितने सुन्दर उपकरण हैं और वे लोग कितने चतुर और कुशल हैं जो इनका उपयोग करते हैं!

अत्यधिक उतावलेपन और स्वार्थपरायणता से जो कुछ उपलब्ध होता है वह शान्ति और त्याग से पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। प्रकृति से उतावलापन नहीं कराया जा सकता। वह यथा-समय और ऋतु में ही सब वस्तुओं को पूर्ण करती है। सत्य किसी का अनुवर्त्ती नहीं हो सकता उसकी शर्तें होती हैं और उनका पालन अवश्य करना पड़ता है। उतावलेपन और क्रोध से वह पर कोई वस्तु बेकार नहीं होती मनुष्य को यह ज्ञात करना पड़ता है कि वह संसार पर नियंत्रण नहीं कर सकता, बल्कि वह स्वयं पर नियंत्रण कर सकता, है; वह दूसरों की इच्छाओं का दमन नहीं कर सकता बल्कि अपनी ही इच्छा को परि-

वर्तित और नियंत्रित कर सकता है : और संसार उसका अनुगमन करता है जो सत्य का अनुसरण करता है; लोग उस व्यक्ति का आदेश मानते हैं जो आत्म-विजयी होता है।

यह कुछ गुप्त किन्तु सरल और महान सत्य है कि जो मनुष्य कठोर से कठोर भौतिक बाधा में भी आत्म-नियमन में समर्थ नहीं होता वह दूसरों के पथप्रदर्शन और किसी कार्य के नियंत्रण के अयोग्य होता है। कन्फ्यूशियस ने नीति और राजनीति के उपदेश में यह एक मुख्य सिद्धान्त माना है कि किसी काम-काज का नियंत्रण करने के पहले अपने ऊपर नियंत्रण रखने का मनुष्य को अभ्यास कर लेना चाहिए। जो व्यक्ति कठिनाइयों का सामना होने पर क्षण-क्षण पर सन्देह, बिरोध के तूफान और प्रचंड क्रोधाग्नि में ग्रस्त हो जाने के अभ्यस्त होते हैं वे गम्भीर उत्तरदायित्व के कार्यों और महान् कर्तव्यों के सर्वथा अयोग्य होते हैं और साधारणतया थोड़े समय में अपने कुटुम्ब वा व्यवसाय का प्रवन्ध ऐसे जीवन के साधारण कर्तव्यों में असफल हो जाते हैं। आत्म-संयम का अभाव मूर्खता है, और मूर्खता बुद्धिमत्ता का गौरव-पूर्ण स्थान नहीं ले सकती।

जो अपने दुर्दान्त और भ्रान्त विचारों का नियंत्रण

और दमन करने का प्रयत्न करता है वह प्रति दिन अधिक बुद्धिमान होता जाता है; और यद्यपि आनन्द मन्दिर की रचना कुछ समय के लिए पूरी नहीं जान पड़ेगी, तथापि उस की नींव डालने और दीवाल बनाने के लिये वह शक्ति-संचय करता रहेगा; और एक दिन वह आयगा जब वह अपने निर्मित सुन्दर आवास में एक चतुर महा-शिल्पी के सदृश शान्ति-पूर्वक विश्राम करेगा। बुद्धिमत्ता आत्म-संयम में निहित होती है और बुद्धिमत्ता में आनन्द और शान्ति का निवास होता है।

आत्म-संयम का जीवन निरर्थक त्याग और विषम पिष्टपेषण नहीं है। उस में त्याग अवश्य परन्तु वह त्याग क्षणभंगुर और मिथ्या का इस लिए है कि स्थायी और सत्य का अनुभव किया जा सके। आनन्द का निराकरण नहीं किया जाता, प्रत्युत वह प्रगाढ़ किया जाता है। आनन्द ही जीवन है; इस की उपलब्धि के लिये मनुष्य की दासतानुवर्त्ती आकांक्षा ही इस का विनाश करती है। जो व्यक्ति सदा किसी नई उत्तेजना का इच्छुक रहता है उससे अधिक उद्विग्न कौन हो सकता है? जो व्यक्ति आत्म-संयम के कारण दृढ़, शान्त और विचारवान होता है क्या उससे भी अधिक सुखी कोई

व्यक्ति हो सकता है ? दो प्रकार के मनुष्यों में भौतिक जीवन तथा सुख का कौन सबसे अधिकारी है— वह जो कि रसना-लोलुप, और विषयासक्त है और केवल सुखोपभोग के लिए जीता है अथवा वह जो कि शान्त प्रकृति का है और अपने शरीर को नियंत्रण में रखता है और उसकी आवश्यकता समझता है तथा उपयोग का अनुसरण करता है ?

जिस प्रकार इन्द्रियों पर संयम रखने वाला व्यक्ति भौतिक जीवन, सुख और बल का अत्यधिक भोक्ता होता है उसी प्रकार विचारों पर संयम रखने वाला आध्यात्मिक जीवन, परमानन्द और शक्ति का अधिकारी होता है, क्योंकि आत्म-संयम से केवल आनन्द ही नहीं प्राप्त होता प्रत्युत ज्ञान और प्रज्ञा का भी उदय होता है। अज्ञान और स्वार्थ के द्वार जब बन्द होते हैं तो ज्ञान और प्रज्ञा के फाटक खुल जाते हैं। सद्गुण का अभ्यास ज्ञान की प्राप्ति है। विशुद्ध मस्तिष्क प्रबुद्ध मस्तिष्क है। जो अपना नियंत्रण भली भाँति कर लेता है वह कल्याण का भी अधिकारी होता है।

बहुत से लोग सुकृति में भी पिष्टपेषणता का अनुभव करते हैं परन्तु यदि किसी ने नाम के लिए तो किसी वस्तु

की आकांक्षा परित्यक्त कर दी हो, परन्तु उसकी भावना दूर न हुई हो, उसे भी सुकृति समझा जाय तब तो यह पिष्टपेषण अवश्य है। आत्म-संयमी व्यक्ति केवल अपने गर्हित भोग विलास ही परित्यक्त नहीं करता, बल्कि उनके संभोग की पूर्ण आकांक्षा का भी परित्याग कर देता है। वह सदा ऊँचे ही उठता है, नीचे की ओर नहीं देखता; और अभिनव सौन्दर्य, नूतन कीर्ति और महान् आशाएँ पग पग पर उसका स्वागत करती हैं।

आत्म-संयम में गुप्त रूप से निहित ज्ञानालोक को देखकर मैं चकित हो जाता हूँ; सत्य की अनन्त अनेकता को देखकर मैं लुब्ध हो जाता हूँ; आशा की उत्कृष्टता देख कर मैं हर्षातिरेक में ओत-प्रोत हो जाता हूँ; उसकी महत्ता और शान्ति से मैं आनन्द में विभोर हो जाता हूँ।

आत्म-संयम के मार्ग में विजय का आनन्द है; विस्तृत और प्रसारित होती हुई शक्ति की चेतनता है; दिव्य ज्ञान के अखंड भंडार की उपलब्धि है; और मानव-जाति की सेवा का स्थायी आनन्द है। जो व्यक्ति इसके अंश का भी अनुसरण करता है वह आत्म-संयम करता है, विजय प्राप्त करता है और एक ऐसे आनन्द का अनुभव करता है जिसे निष्क्रिय और अविवेकी व्यक्ति

ज्ञात भी नहीं कर सकता; और जो व्यक्ति अखंड मार्ग का अनुसरण करता है वह आध्यात्मिक विजेता बन जाता है; अपनी सम्पूर्ण दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर लेता है और उसको निर्मूल कर देता है; वह ब्रह्माण्ड की विभूति पर निर्निमेष दृष्टि से अवलोकन करता है और सत्य की अमरता का आनन्दोपभोग करता है।

५—सरलता और मुक्ति

आप इस बात को जानते हैं कि किसी बेकार भौतिक पदार्थ के बोझ से व्यर्थ लदे होने का क्या अर्थ है; ऐसे बोझ से छुट्टी पाने पर प्राप्त सुख का भी आप को अनुभव होगा। आप के इस अनुभव से दो प्रकार के जीवन का अंतर व्यक्त हो जाता है जिसमें एक अभिलाषायें, अंधविश्वास और कल्पनाओं के जाल के बोझ से दबी हो और दूसरी अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओं की तृप्ति और सम्पूर्ण विवादों और कल्पनाओं को दूर कर, अपने जीवन की सत्यता के शान्त विचार के कारण सरल और मुक्त हो।

कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपनी आलमारी, ताकों और सारे कमरे को नित्य कूड़ा कबाड़, निरर्थक वस्तुओं से भर कर सजाया करते हैं। कभी कभी ये बेकार वस्तुएँ इतनी भर दी जाती हैं कि कमरे की ठीक सफाई भी नहीं

हो पाती और चारों ओर कीड़े मकोड़ों का निर्विघ्न राज्य हो जाता है। कूड़े कबार की कोई उपयोगिता नहीं होती फिर भी वे उनका पिंड नहीं छोड़ते, हालाँ कि वे उन वस्तुओं को फेंक दें तो कमरे में कलोल करते हुए कीड़े-मकोड़ों से भी छुट्टी मिल जाय; परन्तु वे केवल यह जान कर सन्तुष्ट होते हैं कि चीज़ पड़ी है; उन्हें यह जान कर प्रसन्नता होती है कि वह वस्तु उनके अधिकार में है और यदि उन्हें यह मालूम हो कि यह वस्तु दूसरों के यहाँ नहीं है तब तो पूछना ही क्या; वे यह भी सोचते हैं कि वे वस्तुयें किसी दिन काम आ सकती हैं जैसा उनके संतोष के लिये किसी मनचले कवि ने लिखा है–

सकल वस्तु संग्रह करे, इक दिन आवे काम।

वे यह भी सोचते हैं कि शायद उन वस्तुओं का मोल भी बढ़ जाय; अथवा उन्हें उन वस्तुओं को देख कर अपनी पुरानी बातें याद आ जाती हैं जिनका समय समय पर वे स्मरण कर लिया करते हैं, और उन पर शोक कर अभिमान पूर्वक आनन्द का अनुभव किया करते हैं।

किसी रुचिकर और सुसज्जित भवन में ऐसी वेकार वस्तुओं को स्थान नहीं दिया जाता जिससे धूल, असुविधा और उन वस्तुओं की रक्षा से वचा रहा जा सके; और

यदि वे एकत्रित ही हो जाती हैं तो भवन में प्रकाश, सुविधा और स्वच्छता की दृष्टि से भवन की सफाई और मरम्मत के समय उन वस्तुओं को कूड़ा में डाल दिया जाता है या जला दिया जाता है।

इसी प्रकार मनुष्य अपने मस्तिष्क में मानसिक कूड़ा-कर्कट आदि भर लेते हैं और अनुरक्ति पूर्वक उन से लिपटे रहते हैं तथा उनके खो जाने का भय उनको घेरे रहता है। अतृप्त इच्छायें; गर्हित भोग विलास की अत्यधिक लालसायें, टोना, जादू, देवी, देवता और अनन्त मत मतान्तरों के बखेड़ों में परस्पर विरोधी अंध-विश्वास; इसी तरह की निराधार बातों और कल्पनाओं का इतना पेचीदा जाल निरंतर बुना जाता है कि जीवन की सरल, सुन्दर और आत्मपरिपूर्ण बातें दृष्टि से लुप्त हो जाती हैं और ज्ञान आध्यात्म शास्त्र के बखेड़ों के नीचे दब जाता है।

इन अभिलाषाओं के कष्टकर बखेड़ों और सन्त-तियों की अधिकता से छुटकारा पाने तथा स्थायी और अत्यावश्यक बातों के अनुसरण में ही सरलता है।

किन्तु जीवन में स्थायी वस्तु क्या है ? आत्या-वश्यक क्या है ? केवल सद्गुण स्थायी है, केवल आचरण अत्यावश्यक है। सभी निरर्थक बातों से मुक्त होने और

उचित रूप से समझे जाने तथा आचरित होने पर जीवन इतना सरल है कि इसे इने गिने ऐसे सिद्धान्तों के रूप में बताया जा सकता है जिन्हें भूला नहीं जा सकता और जिनके अनुसार आचरण करना अवश्य कठिन है, परन्तु समझना बहुत ही सरल है; और सभी महापुरुषों का जीवन ऐसा ही सरल होता है। भगवान बुद्ध ने जीवन के आठ सद्गुण बतलाए हैं जिनके आचरण के लिए उन्होंने बतलाया है कि मनुष्य को पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता है; इन आठ सद्गुणों को भी कम कर उनका सार उन्होंने एक सद्गुण बतलाया है जो 'दया' है। कन्फ्यूशियस की शिक्षा है कि ज्ञान की पूर्णता पाँच सद्गुणों में है और उनका भी सार एक है जिसका नाम 'सहानुभूति' है। ईसा मसीह ने समस्त जीवन का सार 'प्रेम' बतलाया है। दया, सहानुभूति और प्रेम तीनों एक ही गुण हैं। ये कितने सरल भी हैं, परन्तु मैं नहीं समझता कि इन गुणों की गहराई और ऊँचाई पूर्ण रूप से लोग समझते होंगे, क्योंकि जो कोई भी इन का पूर्ण, ज्ञान प्राप्त करेगा वह इनके अनुसार आचरण अवश्य करेगा। वह पूर्ण, सिद्ध और दिव्य व्यक्ति हो जायगा उसमें ज्ञान सद्गुण और बुद्धि का तनिक भी अभाव न होगा। जब मनुष्य को यह

ज्ञान हो जाता है कि कैसा मानसिक कूड़ा-कर्कट उसने संचित कर रक्खा था और अब उस को फेंकने के लिए विवश हो रहा है तभी वह सद्गुण के सरल सिद्धान्त के अनुसार अपने जीवन को नियमित करने के लिये मनोयोग पूर्वक उद्योग करने लगता है। जब तक मनुष्य का मस्तिष्क पवित्रता और सरलता की निश्चित परिणति तक नहीं पहुंचता तब तक उसके उपर्युक्त आचरण का मार्ग उसके विश्वास, साहस, धैर्य, दया, विनम्रता, विवेक और इच्छा शक्ति का जो बलिदान कराता है वह असीम दुस्सह होता है। किसी मस्तिष्क, वा भवन का प्रतिशोधन-मार्ग सरल और सुगम नहीं है परन्तु इसका फल आनन्द-मंगल-प्रद होता है।

भौतिक या मानसिक बातों के सभी विस्तृत जंजाल कतिपय नियमों या सिद्धान्तों के रूप में किये जा सकते हैं जिनके आधार पर वे स्थित हैं और नियमित होते हैं। चतुर पुरुष अपने जीवन को कतिपय सरल नियमों से नियमित करते हैं। प्रेम के सुन्दर सिद्धान्त से नियमित जीवन की सभी बातें दिव्य रूप से परस्पर अनुकूल होती हैं। सभी मन, वचन और कर्म का समुचित स्थान होगा और उनमें कोई विवाद या अनियमितता नहीं होगी।

एक विद्वान ने विद्वत्ता और पवित्रता के लिये बहुत विख्यात एक बौद्ध भिक्षु से यह प्रश्न किया, " बौद्ध धर्म में सबसे मुख्य वस्तु क्या है ? " भिक्षु ने उत्तर दिया, "बौद्ध धर्म में सबसे मुख्य बात दुष्कर्म का परित्याग और सुकर्म करने का प्रयत्न करना है। फिर उस विद्वान ने पूछा, " मैंने आप से वह बात कहने के लिये नहीं कहा जो तीन वर्ष का बच्चा भी जानता है; मैं आप से यह पूछ रहा हूं कि बौद्ध धर्म में सबसे मुख्य, सबसे महत्वपूर्ण, और सबसे आवश्यक बात क्या है ? " इस पर भिक्षु ने उत्तर दिया , " बौद्ध धर्म में सबसे मुख्य, सबसे महत्वपूर्ण, और आवश्यक बात दुष्कर्म का परित्याग करना और सुकर्म करने का प्रयत्न करना है। यह सच है कि बात तीन वर्ष का बच्चा जान सकता है किन्तु इसको आचरित करने में पके बाल वाले वयोवृद्ध भी असफल हो जाते हैं। " वह विद्वान यथार्थ तथ्य नहीं खोजता था, वह सत्य नहीं खोजता था; वह कोई सूक्ष्म आध्यात्मिक कल्पना सुनना चाहता था जिसके साथ कोई दूसरी कल्पना उठती, उसके बाद फिर नई नई दूसरी कल्पनायें उठतीं ; और इस प्रकार उसे अपनी विचक्षण बुद्धि का कौशल दिखलाने का अवसर मिलता।

बहुत से आध्यात्म-शास्त्री अपने सिद्धान्तों की पेचीदगी पर अभिमान कर गर्व करते हैं, परन्तु उनके अन्दर घुसने पर मालूम पड़ सकता है कि वह सिर्फ जंजाल है और उस बखेड़े से दूर होकर जीवन के तथ्य, सरलता और मुक्ति की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिये। अपनी शक्ति और समय को आध्यात्मिक जंजाल के सुन्दर किन्तु निरर्थक सूत्रों को बुनने में विनष्ट करने की अपेक्षा उनका सदुपयोग स्थायी और असंदिग्ध सद्गुणों की प्राप्ति और अभ्यास में करना चाहिये।

किन्तु मैं जहाँ कल्पना और अभिमान का विरोध करता हूं वहाँ मैं अज्ञानता और मूर्खता का समर्थन नहीं करता। विद्वत्ता एक अच्छी वस्तु है। विद्वत्ता केवल विद्वत्ता की दृष्टि से वा अभिमान योग्य अर्जित वस्तु की भाँति निर्जीव वस्तु है परन्तु मानव-समाज की उन्नति और लाभ के साधन की भाँति सजीव शक्ति है। विनीत मस्तिष्क के साथ होने से यह कल्याण के लिये शक्तिशाली साधन है। बौद्ध भिक्षु अपने प्रश्नकर्त्ता से कम विद्वान नहीं था, किन्तु वह अधिक सरल और चतुर था। यदि कल्पना को भी केवल कल्पना माना जाय और उसे सत्य का रूप न दे दिया जाय तो उसमें भ्रम नहीं फैल सकता

तथापि अत्यधिक चतुर व्यक्ति कल्पना का सर्वथा परित्याग करते हैं और सद्गुण के सरल अभ्यास में रत हो जाते हैं। इस प्रकार वे दिव्य-रूप हो जाते हैं और सरलता, ज्ञान तथा उन्नति के शिखर पर पहुंच जाते हैं

सरलता के आनन्द और मुक्ति की प्राप्ति के लिये मनुष्य को कम नहीं विचार करना चाहिये बल्कि अधिक विचार करना चाहिये; केवल विचार को ऊंचे और लाभप्रद उद्देश्य में लगाना चाहिये और निरर्थक सिद्धान्तों के पचड़े में अपव्यय करने के स्थान पर जीवन के कर्त्तव्य और तथ्यों पर केन्द्रित करना चाहिये।

सरलता का जीवन खंडशः भी सरल होता है, क्योंकि इसका नियमन करने वाला हृदय विशुद्ध और बलशाली हो गया होता है, और यह सत्य पर अवलम्बित तथा स्थित रहता है। हानिकर आस्वाद, आच्छादन का निरर्थक बाहुल्य; वाणी की अतिशयोक्ति, उद्योग का मिथ्यात्व; मानसिक कौतुक और निरर्थक कल्पना में सहायक विचार—इन सब का इस लिये परित्याग कर दिया जाता है कि सद्गुण को अधिक ठीक समझा जा सके और दृढ़ता से ग्रहण किया जा सके; जीवन के कर्त्तव्यों का इस रूप से पालन किया जाता है कि उससे 'आत्म' का लोप

हो जाता है, और वे एक नवीन और महान आलोक-सत्य का आलोक-में परिवर्तित हो जाते हैं; इस समय तक अज्ञात जीवन के महान मुख्य तथ्य स्पष्ट रूप से व्यक्त दिखलाई पड़ते हैं, और अनन्त सत्य, जिसके विषय में बकवादी सिद्धान्तवादी केवल कल्पना और विवाद कर सकते हैं, ठोस अधिकृत वस्तु हो जाता है।

सरल-हृदय और सत्य-हृदय, सद्गुणी और चतुर भविष्य, अज्ञात, तथा अज्ञेय की चिन्ता और भय से अब उद्विग्न नहीं होते, वे उस समय के कर्तव्य, ज्ञात और ज्ञेय का आधार लेकर आगे बढ़ते हैं। वे यथार्थ को कल्पना से परिवर्तित नहीं करते। वे सद्गुण में स्थायी निर्भयता देखते हैं, वे सत्य में देदीप्यमान आलोक देखते हैं, जो जीवन के तथ्य का यथार्थ क्रम तो प्रकट करता ही है, अज्ञान के गर्त में दिव्य आशा की ज्योति प्रज्वलित करता है; अतएव वे शान्ति का अनुभव करते हैं।

सरलता अबाध रूप से काम करती है और महानता तथा शक्ति हो जाती है। सन्देह, कपट, अपवित्रता,

सरलता और मुक्ति

निराशा, विषाद, सन्देह और भय–ये सब वस्तुएं परित्यक्त होकर पीछे छूट जाती हैं और भुला दी जाती हैं, और मुक्त पुरुष बलशाली, आत्म-विजयी, शान्त और पवित्र हो कर अटल विश्वास के साथ काम करता है तथा दिव्य लोक में विचरण करता है।

६—सुविचार और विश्रान्ति

जीवन कुछ घातक और कुछ उपकारशील स्व-
भावों का सम्मिश्रण है जिन सब का उत्पत्ति-स्थान विचार
करने का स्वभाव है। विचार ही मनुष्य का विधायक है,
इस लिए उत्तम विचार जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण
वस्तु है। चतुर और मूर्ख मनुष्य में मुख्य अंतर केवल
इतना ही है कि चतुर व्यक्ति अपने विचारों का नियंता होता
है और मूर्ख अपने विचारों से स्वयं नियंत्रित होता है।
चतुर व्यक्ति निश्चित करता है कि उसे किस प्रकार और क्या
सोचना है और ऊपरी बातों द्वारा मुख्य विषय से अपना
विचार विचलित नहीं होने देता; किन्तु मूर्ख ऊपरी बातों
द्वारा अपने हृदय में उत्पन्न प्रत्येक दुर्भाव विचार का बंदी
हो जाता है और अपने जीवन भर संवेदना, क्रोध
तथा कामना की असहाय कठपुतली बन कर नाचता है।

सुविचार और विश्रान्ति

लापरवाही और भद्दे ढंग से सोचना, जो साधारणतया विचारशून्यता कहलाता है, असफलता, दुष्कर्म और दुष्टता का सहचर है। कोई भी वस्तु, कोई भी प्रार्थना, धार्मिक कृत्य, कोई भी लोकोपकार के कार्य कुविचार के दुष्परिणाम का निराकरण नहीं कर सकते। केवल सुविचार ही कुपथ-गामी जीवन का उद्धार कर सकते हैं। मनुष्यों और संसार के सम्बन्ध में विचार की उत्तम प्रवृति ही निवृत्ति और शान्ति प्रदान कर सकती है। विजयी जीवन केवल उन्हीं का हो सकता है जो अपने हृदय और विचार को उत्कृष्ठ गुणों के अनुरूप कर देते हैं। उन्हें अपने विचार को तार्किक, आनुक्रमिक, अनुरूप और सुष्ठ बना लेना चाहिये। उन्हें अपने विचार निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार निर्मित और गठित कर लेना चाहिये, और तत्पश्चात् अपने जीवन को ज्ञान की दृढ़ भिति पर अवलंवित करना चाहिये। उन्हें केवल दयालु नहीं होना चाहिये, प्रत्युत विचार पूर्वक दयालु होना चाहिये; और निश्चय रूप से जानना चाहिये कि वे दयालु क्यों हैं? उनकी दयालुता एक स्थिर गुण होना चाहिये, वह क्रूरता के कार्य और विरोध के उद्वेग से संकीर्ण विच्छिन्न भावावेश नहीं होना चाहिये। केवल सद्वृति के वातावरण में ही उनमें

सद्वृत्ति नहीं होनी चाहिए; उन की सद्वृत्ति इस प्रकार की होनी चाहिये कि वह दूषित वायुमंडल में ग्रस्त होने पर भी अक्षय ज्योति से जाज्वल्यमान रह सके। अपने समीप के लोगों की निन्दा स्तुति, वा भाग्य चक्र से उन्हें अपने को दिव्य मानवता के सिंहासन से किसी भी दशा में च्युत न होने देना चाहिये। सद्वृत्ति उनका अविचल स्वभाव हो जाना चाहिये; बवंडर और तूफान से त्राण पाने के लिए उनका आश्रय स्थल होना चाहिये।

और सद्वृत्ति केवल हृदय की ही नहीं होती; यह विचार शक्ति की भी होती है; और विचार शक्ति की इस सद्वृत्ति के बिना हृदय की सद्वृत्ति निष्फल होती है। वासना की तरह विवेक में भी दुर्गुण होते हैं। जिस प्रकार विषयाशक्ति स्नेह का प्रतिबंधक है उसी प्रकार आध्यात्मिक वितर्क विचार-शक्ति का प्रतिबंधक है। कल्पना की उच्चतम उड़ान रुचिकर प्रतीत होने पर भी कोई विश्राम का स्थल नहीं प्रकट करती, और ज्ञान मस्तिष्क वाञ्छित सत्य को पाने के लिये तथ्यों और मौलिक सिद्धान्तों की ओर ध्यान देता है। जिस प्रकार आसमान में उड़ता हुआ पक्षी आराम और विश्राम के लिए वृक्ष के कोटर में अपने घोंसले में लौटता है उसी

प्रकार काल्पनिक विचारवेत्ता निश्चय और शान्ति के लिये सुकृति के कोटर में लौटता है।

सुकृति के सिद्धान्त का निश्चय करने और उसके व्यवहार की सब कठिनाइयों को समझने के लिये विचार-शक्ति को अवश्य अभ्यास होना चाहिये। इसकी शक्तियों को निरर्थक बारीकियों में व्यर्थ फँसाने से बचाना चाहिये। और सच्चाई तथा ज्ञान के मार्ग में उसे प्रवृत्त करना चाहिये। विचार वेत्ता को अपने मस्तिष्क में यथार्थता और कल्पना का अंतर समझना चाहिये। उसे अपने यथार्थ ज्ञान का विस्तार ज्ञात होना चाहिये। उसे जानना चाहिये कि वह क्या जानता है उसमें तथ्य एवं तथ्यके सम्बन्ध में सम्मति धारणा और ज्ञान, तथा भ्रम और सत्यता का अंतर समझ सकने की शक्ति होनी चाहिये। उसे मस्तिष्क की सद्वृत्ति के अनुसंधान में, जो सत्य का बोध करती है और विचारशील तथा उज्ज्वल जीवन का निरूपण करती है, उसे तर्क से भी अधिक। तर्किक होना चाहिये, तथा अपने मस्तिष्क की त्रुटियों को प्रदर्शित करने में दूसरों के विचारों की त्रुटियों का प्रदर्शन करने में लग्न अत्यधिक उग्र तार्किक से भी अधिक उदंड होना चाहिये। कुछ समय तक ही इस प्रकार की समीक्षा करते रहने से उसे यह जान

कर विस्मय होगा कि उसके वास्तविक ज्ञान का विस्तार कितना न्यून है; तथापि वह उसके अपने अधिकार में रहने से बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करेगा, क्योंकि यह न्यून होने पर भी ज्ञान का विशुद्ध स्वर्ण है; और मनो खनिज धातु में रत्ती भर छिपे हुये सोने को रखना अच्छा है वा खनिज धातु को तोड़ कर उसे फेंक केवल सोना निकाल कर रखना अच्छा ?

जिस प्रकार खनिज कान्तिमान हीरे की खोज के लिये मनों भद्दी मिट्टी को खोद फेंकता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक खनिज, वास्तविक विचारवेत्ता अपने मस्तिष्क से सम्मति, धारणा, वितर्क और कल्पना के संचय को सत्य का कान्तिमान मणि प्राप्त करने के लिए विनष्ट कर देते हैं, जो बुद्धि और ज्ञान का प्रदाता है।

इस प्रकार की शोधन-क्रिया से जो एकत्रित ज्ञान अन्ततः अभिव्यक्त होता है वह सद्बुद्धि के इतना अनुकूल होता है कि उसका विभाजन नहीं हो सकता, तथा एक पृथक वस्तु के सदृश वह पृथक नहीं की जा सकती। ज्ञान का अनुसंधान करने में बुद्धदेव ने सद्बुद्धि को प्राप्त किया था। बड़े बड़े महात्माओं के लिए कठिन

सद्वृत्ति के आदेश हैं। जब ज्ञान सद्वृत्ति से पृथक कर दिया जाता है तो प्रज्ञा नष्ट हो जाती है। मनुष्य जिसे व्यवहृत करता है उसे जानता है। वह जिसे व्यवहृत नहीं करता उसे नहीं जानता। एक व्यक्ति 'प्रेम' पर पुस्तिका लिख सकता है, उपदेश दे सकता है, परन्तु यदि वह अपने कुटुम्ब के साथ कटु व्यवहार करता है, वा शत्रु को द्वेष की दृष्टि से देखता है, तो उसे 'प्रेम' का क्या ज्ञान है? ज्ञानी व्यक्ति के हृदय में एक सुप्त और स्थायी दया होती है जो बकवादी सिद्धान्त वेत्ता की कोमल बातों को लज्जित कर देती है। शान्ति का बोध उसे ही हो सकता है जिसके हृदय में घृणा का अभाव होता है; जो सबके साथ शान्ति पूर्वक रहता है। सद्वृत्ति की छद्ममय परिभाषायें जब दुष्कर्म-प्रवृत्त जिह्वा से मुखरित होती हैं तो अज्ञान की वृद्धि ही करती हैं। ज्ञान का स्रोत केवल जानकारी की बातें कण्ठस्थ कर लेने की अपेक्षा अधिक गहरा है। जो ज्ञान सद्वृत्ति के साहचर्य से उत्पन्न होता है, वही दिव्य होता है। विनम्रता से जहाँ बुद्धि खोखली सम्मतियों और निरर्थक कल्पनाओं से रहित हो जाती है वहाँ उसमें जिज्ञासु अंतर्दृष्टि और अजेय शक्ति का उद्भव होता है।

कुविचारी अपनी कुवृत्ति से जाना जाता है और सुविचारी अपनी सुवृत्ति से। कुविचार के मस्तिष्क पर विपत्तियों और उद्विग्नताओं का प्रहार होता है, और उसे अविचल विश्राम नहीं मिलता। वह सोचता है कि दूसरे उसको हानि पहुंचा सकते हैं, बाधा डाल सकते हैं, ठग सकते हैं, पदच्युत कर सकते हैं और विनष्ट कर सकते हैं। सद्वृत्ति के आश्रय को न ढूंढ़ कर वह अपना ही आश्रय ढूंढ़ता है और सन्देह, ईर्षा, विरोध; तथा प्रतिहिंसा का आश्रय लेता है, और अपनी कुप्रवृत्तियों के अग्नि कुंड में ही भस्मीभूत हो जाता है। चुगली खाये जाने पर वह स्वयं चुगली खाता है; दोषारोपित होने पर स्वयं दोषारोपण करता है; आक्रमण किये जाने पर अपने विरोधी पर वह दुगुनी भयानकता से आक्रमण करता है। कुविचारी अपने साथ अन्याय हुआ समझ कर प्रतिरोध और विषाद का दास बन जाता है। अंतर्दृष्टि का अभाव और गुण दोष के अंतर का ज्ञान न होने से वह यह नहीं देख पाता कि उसके सम्पूर्ण दुखों की जड़ उसका अपना ही दोष है, उसके पड़ोसी का नहीं।

सुविचारी या विचारवान व्यक्ति अपनी या अपनी रक्षा की चिन्ता नहीं करता और उसके प्रति हुई बुराई

के दुर्व्यवहार उसमें उद्विग्नता वा अशान्ति नहीं उतपन्न करते। वह यह नहीं सोच सकता कि किसी व्यक्ति-विशेष ने उसे हानि पहुंचाई है। वह अनुभव करता है कि अपने दोषों के अतिरिक्त किसी दूसरे के दोष से उसकी हानि नहीं हो सकती। वह समझता है कि उसका कल्याण उसी के हाथ में है और उसके विश्राम का हरण उसको छोड़ कर दूसरा कोई नहीं कर सकता। सद्वृत्ति ही उसका रक्षक होती है और प्रतिहिंसा वह जानता ही नहीं। वह अपने को दृढ़ता पूर्वक शान्ति में रखता है और विरोध उसके हृदय में स्थान ही नहीं पा सकता। लोलुपता का सामना करने के लिये वह सदा सन्नद्ध रहता है और उसके मस्तिष्क के दृढ़ दुर्ग पर उसका प्रहार निरर्थक होता है। सद्वृत्ति में रहते हुये वह बल और शान्ति का अधिकारी होता है।

सुविचारी, मनुष्य और संसार के प्रति मस्तिष्क की उचित वृत्ति– प्रगाढ़ और प्रेममय विश्रान्ति की वृत्ति जान लेता है और प्राप्त कर लेता है। इसे निवृत्ति नहीं कहना चाहिये, यह बुद्धिमत्ता है। वैराग्य नहीं है, प्रत्युत जागरुक और कुशाग्र अंतर्दृष्टि है। उसने जीवन के तथ्य को ग्रहण कर लिया है; वह वस्तुओं को वैसे ही देखता

है जैसी वे हैं। वह जीवन की छोटी बातों को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते, बल्कि उन्हें सृष्टि के नियमों के अनुसार देखते हैं; विश्व विधान के अंश रूप में उन वस्तुओं का उचित स्थान देख कर वे उन पर विचार करते हैं। वे देखते हैं कि विश्व की रचना न्याय के आधार पर हुई है। वे मनुष्यों के क्षण स्थायी द्वन्द्व और तुच्छ बातों के लिये झगड़ों को देखते हैं परन्तु उनमें लिप्त नहीं होते वे पक्षपात नहीं कर सकते। उनकी सहानुभूति सब के साथ होती है। वे एक वस्तु को दूसरी की अपेक्षा अधिक पसंद नहीं करते। उन्हें ज्ञात होता है कि जिस प्रकार सद्वृत्ति व्यक्तियों में विजयी होती है उसी प्रकार संसार में भी सद्वृत्ति ही अन्ततः विजयी होगी; तथा एक प्रकार से सद्वृत्ति सदा विजयी होती है क्योंकि दुर्वृत्ति स्वयं अपने को पराजित करती है।

सद्वृत्ति की पराजय नहीं होती; न्याय तोड़ा नहीं जा सकता। मनुष्य चाहे जो करे, न्याय का साम्राज्य कायम ही है, और इसके पास सिंहासन पर आक्रमण या बगावत नहीं की जा सकती, उसके उलटने या विजित करने की तो बात ही दूर रही; और यही सच्चे विचारशील की स्थायी विश्रान्ति का आधार है। सदाचारी होकर मनु-

सदाचार के नियमों का अनुभव करता है; प्रेम अर्जित कर वह अनन्त प्रेम का ज्ञान प्राप्त करता है; कुवृत्ति पर विजय प्राप्त कर वह जानता है कि सद्वृत्ति सर्व श्रेष्ठ होती है।

सच्चा विचारवेत्ता वही है जिसका हृदय घृणा, काम-वासना और दर्प से रहित हो; जो निर्दोष नेत्र से संसार को देखता है; जिनके हृदय में घोरतम शत्रु भी शत्रुता का भाव उत्पन्न नहीं कर सकते, बल्कि केवल कोमल दया का भाव ही उत्पन्न करते हैं; जो उन वस्तुओं के विषय में व्यर्थ बात नहीं करते जिनका उन्हें पूरा ज्ञान न हो, और जिनका हृदय सदा शान्ति रहता है।

यदि कोई मनुष्य यह जानना चाहे कि उसका मस्तिष्क सत्य के अनुरूप है तो उसे यह देखना चाहिये कि उसके हृदय में विषाद का बिल्कुल अभाव हो गया है, उसमें द्वेष भावना नहीं रह गई है; और जहाँ पहले वह उसमें निन्दा का भाव था वहाँ प्रेम भावना है।

कोई व्यक्ति विद्वान हो सकता है, किन्तु यदि वह चतुर नहीं है तो वह सच्चा विचारवेत्ता नहीं हो सकता केवल विद्वत्ता से कोई कुवृत्ति पर विजयी नहीं हो सकता; केवल अधिक अध्ययन से कोई अपने पाप और संताप

को पराभूत नहीं कर सकता। केवल अपने पर विजय प्राप्त कर ही मनुष्य कुवृत्ति पर विजय प्राप्त कर सकता है; केवल सदाचार का व्यवहार करने से ही परिताप का विनाश हो सकता है।

विजयी जीवन न तो चतुर के लिये है, न विद्वान के लिये और न आत्मविश्वासी के लिये है, प्रत्युत विशुद्धात्मा, सुकृती और चतुर के लिये है। पहले प्रकार के लोग जीवन में कोई विशेष सफलता प्राप्त करते हैं परन्तु महान सफलता, ऐसी अदम्य और पूर्ण सफलता जो प्रत्यक्ष पराजय में भी प्रबल विजय से द्युतिमान होती है, केवल दूसरे प्रकार के व्यक्तियों को ही मिल सकती है।

सद्वृत्ति विचलित नहीं हो सकती; सद्वृत्ति भ्रान्ति-पूर्ण नहीं हो सकती; सद्वृत्ति ध्वस्त नहीं हो सकती। जो व्यक्ति सद्वृत्ति के अनुरूप विचार करता है, जो सदा-चार का व्यवहार करता है, जिसका मस्तिष्क सत्य का अनुचर होता है, वही जीवन और मृत्यु, दोनों में विजयी होता है; क्योंकि सद्वृत्ति की अवश्य ही विजय होती है और सदाचार तथा सत्य संसार के दो स्तम्भ हैं।

७—शान्ति और साधन

जो व्यक्ति सत्य का अनुगामी होता है वह आत्म-तृप्त होता है। पवित्र विचार युक्त और निर्मल-जीवन में उताव-लेपन और उत्तेजना, तथा चिन्ता और भय का समावेश नहीं होता। आत्म-विजय से स्थायी शान्ति प्राप्त होती है। शान्ति उज्जवल आलोक है जो सद्‌गुणों को कान्ति प्रदान करता है। जिस प्रकार सन्तों के मुख के चतुर्दिक तेज दिखलाई पड़ता है उसी प्रकार यह अपने द्यु तिमंडल के साथ सद्‌गुणों को आवृत्त करती है। शान्ति के विना मनुष्य का प्रवलतम वल केवल अतिवर्णित दुर्वलता है। मनुष्य जहाँ प्रायः प्रत्येक वाह्य आघात से विचलित हो जाता है, वहाँ उस में आध्यात्मिक वल कहाँ है, उस में साधारण पुरुषोचित वल भी कहाँ है ? और जो व्यक्ति प्रलोभन और फँसाव के समय अपने को पाप मय जीवन वा अवांछित इंद्रिय-सुख में सर्वथा लिप्त कर देते हैं वे क्या स्थायी प्रभाव रख सकते हैं ?

सद्गुणी अपने ऊपर संयम रखते हैं और अपनी वासना, तथा भावावेश पर दृष्टि रखते हैं; इस प्रकार वे अपने मस्तिष्क पर अधिकार जमाते हैं और शनैः शनैः शान्ति उपलब्ध करते हैं और जब वे शान्ति प्राप्त कर लेते हैं तो प्रभाव, शक्ति, महानता, अविच्छिन्न आनन्द और जीवन की पूर्णता प्राप्त करते हैं।

जो व्यक्ति अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रखते, जिन पर उनकी वासनाओं और भावावेश का अधिकार होता है, जो उत्तेजना के इच्छुक होते हैं और गर्हित भोग-विलासों में लिप्त रहते हैं, ऐसे लोग आनन्द पूर्ण विजयी जीवन के योग्य नहीं होते और न तो शान्ति के सुन्दर रत्न का गौरव ही समझ सकते हैं और न प्राप्त ही कर सकते हैं। ऐसे लोग मुँह से शान्ति के लिए जाप कर सकते हैं किन्तु ये लोग हृदय से इच्छा नहीं रख सकते: अथवा 'शान्ति' शब्द उनके आनन्दोपभोग के लिये क्षणिक सुख का एक दूसरा प्रकार हो सकता है।

शान्ति पूर्ण जीवन में अनुताप और ग्लानि की प्रति क्रियात्मक घड़ियाँ युक्त पाप मय उत्तेजना के अस्थिर काल नहीं होते। घृणा पूर्ण निन्दा के साथ साथ घृणा पूर्ण गर्व नहीं होता; आत्म सम्मान में

अभाव और विषाद के साथ साथ अधम कार्य नहीं होते; बल्कि इन सब का लोप हो गया होता है और केवल सत्य रह जाता है तथा सत्य सदा शान्ति से आवृत्ति रहता है। शान्त जीवन एक अविछिन्न आनन्द है। असंयमित व्यक्ति के लिए जहाँ कर्त्तव्य भारी मालूम पड़ता है वहाँ शान्त व्यक्ति के लिये वह आनन्द प्रद वस्तु हो जाता है; शान्त जीवन में 'कर्तव्य' शब्द सचमुच ही एका नया अर्थ रखता है; यह सुख का विरोधी नहीं रह जाता, बल्कि यह सुख का सहचर हो जाता है। शान्त व्यक्ति, सन्मार्ग प्रवृत व्यक्ति सुख को कर्तव्य से पृथक कर नहींसकते; इस तरह का बिलगाव आनन्द-लोलुप और उत्तेजना के प्रेमी ही कर सकते हैं।

शान्ति उपलब्ध करना दुस्कर है, क्योंकि मनुष्य मस्तिष्क के निकृष्टतर क्षोभ में क्षणिक सुख के लिए लिप्त रहते हैं जो उन क्षोभों से उत्पन्न होता है। कभी शोक भी एक प्रकार के नैमित्तिक विनोद की तरह स्वार्थपूर्ण लोभदृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि इसे प्राप्त करना कठिन होता है तथापि इस की प्राप्ति का मार्ग सरल है; इस के लिए आवश्यक है कि इस की विरोधी उत्तेजनाओं और व्याघातों का प्रतिकार किया जाय और अपने को दृढ़ता पूर्वक उन

अविचल सद्गुणों से आवृत्त किया जाय जो परिवर्तनशील घटनाओं और परिस्थितियों के साथ परिवर्तित नहीं होते, जिनमें प्रचंड प्रतिक्रिया नहीं होती, और इस लिए जो अविरल संतोष और स्थायी शान्ति प्रदान करते हैं।

शान्ति उसे ही प्राप्त होती है जो अपने ऊपर विजय प्राप्त करता है, जो प्रति दिन अधिकाधिक आत्म तृप्ति, अधिकाधिक आत्म-संयम और मस्तिष्क को अधिकार में रखने का शान्ति पूर्वक उद्योग करता है। कोई व्यक्ति अपने लिये सुख और दूसरों के लिए कल्याणकारी उतनी ही मात्रा में हो सकता है जितनी मात्रा में वह आत्म-संयम रखता है; और इस तरह का आत्म-संयम केवल नियत अभ्यास से ही प्राप्त होता है। मनुष्य को प्रति दिन के अभ्यास से अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए; उसे उनको समझना चाहिए और इन का अध्ययन करना चाहिए कि अपने चरित्र से उनका किस प्रकार निराकरण किया जा सकता है; और यदि वह अनवरत उद्योग शील रहे और साहस न खो बैठे तो वह शनैः शनैः विजयी हो जायगा; और इस तरह प्राप्त की हुई प्रत्येक अल्प विजय (यद्यपि एक प्रकार से किसी भी विजय को अल्प नहीं कहा जा सकता) स्थायी सम्पत्ति

की भाँति उसकी अर्जित और उस के चरित्र में संयोजित उतनी शान्ति होती जायगी। इस प्रकार वह अपने को वली, योग्य और आनन्दित, अपने कर्तव्यों को निर्दोषता पूर्वक पूर्ण करने तथा सभी परिस्थितियों का निर्विघ्न भाव से सामना करने में समर्थ होगा। किन्तु यदि वह इस जीवन में वह शान्ति-पद नहीं भी प्राप्त कर पाता जिसे कोई आघात प्रकंपित नही कर सकता तो भी वह पूर्ण रूप से इतना आत्म तृप्त और पवित्र होगा ही कि जीवन संग्राम को निर्भय होकर लड़ने में समर्थ हो और अपने पीछे अपनी उदारता का परिचय दिलाने के लिए संसार को कुछ अधिक आनन्द मय अवश्य ही छोड़ जायगा।

अनवरत रूप से अपने ऊपर विजय प्राप्त करते रहने से मनुष्य अपने मस्तिष्क की सूक्ष्म गूढ़ताओं को समझने में समर्थ होता है; और यही दिव्य ज्ञान उसे शान्ति में स्थिर होने में समर्थ बनाता है। आत्म ज्ञान के विना मस्तिष्क की स्थायी शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती; और जो लोग भयंकर वासनाओं से अधिकृत हो जाते हैं वे उस पवित्र स्थल तक नहीं पहुंच पाते जहाँ शान्ति का राज्य है। दुर्वल व्यक्ति ऐसा व्यक्ति है जो दुर्दान्त घोड़े पर

सवार होकर घोड़े को मनमानी दिशा में दौड़ने के लिये छोड़ देता है और उसके साथ विवश होकर स्वयं जाता है; बली व्यक्ति उस व्यक्ति की तरह है जो घोड़े पर सवार होकर उसको दृढ़ हाथों से बागडोर द्वारा शासित करता है और जिस दिशा में, जिस गति से घोड़े को ले जाने की उसकी इच्छा होती है, उसे दौड़ाता है।

शान्ति, चरित्र का अनुपम सौन्दर्य है जो दिव्य हो चुकी है या हो रही है और अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों को शान्ति और विश्रामदायक है। जो लोग दुर्बलता और सन्देह से अब तक ग्रसित होते हैं वे शान्त मस्तिष्क की विद्यमानता को अपने उद्विग्न मस्तिष्क के लिये विश्रामदायक तथा कांपते हुये पैरों को उत्तेजना, कष्ट और शोक के समय सान्त्वना और आश्वासन प्रदान करने वाली देखते हैं; क्योंकि जो व्यक्ति अपने पर विजय प्राप्त करने के लिये समर्थ होता है, वह दूसरों की सहायता करने में भी समर्थ हो सकता है। जिसने आत्मा की शान्ति को पराभूत किया है, वह मार्ग में त्रस्त व्यक्ति की सहायता करने में समर्थ हो सकता है।

मस्तिष्क की जो शान्ति परीक्षा या प्रलोभन के दुर्बलताओं, दोषारोपण, मिथ्यारोप या दूसरों की मूर्खता

से विचलित नहीं होती, वह महान आध्यात्मिक बल से उत्पन्न होती है, और निर्मल तथा प्रखर ज्ञान का यथार्थ परिचायक होती है। शान्त मस्तिष्क उन्नत मस्तिष्क होता है। उस व्यक्ति में दिव्य भद्रता और स्थायी दृढ़ता होती है जो अपने ऊपर मिथ्यारोप और निन्दा के लादे जाने पर भी अपनी सत्यनिष्ठा नहीं छोड़ता और अपनी शान्ति परित्यक्त नहीं करता। इस प्रकार की शान्ति आत्म-संयम का परिस्फुटित पुष्प होती है; यह यातना की वह्नि को धैर्य पूर्वक पार कर, आत्मशुद्धि के प्रशस्त साधन से मस्तिष्क को शुद्ध कर शनैः शनैः परिश्रम पूर्वक प्राप्त की जाती है।

शान्त व्यक्ति अपने आन्तरिक आनन्द और ज्ञान के दोनों स्रोतों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है और ये स्रोत कभी निर्जल नहीं होते। उसकी शक्तियाँ उसके पूरे नियंत्रण में होती हैं और उसकी सामर्थ अनन्त होती है। जिस किसी दिशा में वह अपनी शक्तियों को लगाता है, वह मौलिकता और शक्ति प्रकट करता है। और इसका कारण यह है कि वह वास्तविक वस्तुओं से सम्पर्क रखता है, केवल उनके सम्बन्ध में सम्मतियों से नहीं। यदि उसके सामने कोई सम्मति होती है तो वह उनसे प्रभा-

वान्वित नहीं हो जाता, बल्कि उनको केवल सम्पत्ति समझता है, इस कारण उनको बहुत मूल्यवान नहीं समझता। वह आत्माभिमान को भुला दिये होता है और नियमों का अनुगामी होकर प्रकृति और विश्व की शक्ति में संश्लिष्ट होकर एक हो गया होता है। उसकी सामर्थ्य स्वार्थपरता से अबाधित होती है; और उसकी शक्तियाँ अभिमान से अछूती होती हैं। एक प्रकार से वह किसी भी वस्तु को अपनी समझने का भाव भूल गया होता है। उसके सद्गुण भी सत्य के होते हैं, पूर्ण रूप से उसके निज के नहीं। वह सृष्टि-शक्ति का एक चेतन अंग हो जाता है और एक अधम, क्षुद्र वस्तु, व्यक्तिगत स्वार्थों का उपासक नहीं रह गया होता। और आत्मत्व का परित्याग कर वह व्यक्ति से सम्बन्धित, लोभ, परिताप, क्लेश तथा भय आदि विकारों से रहित हो जाता है। वह शान्ति पूर्ण व्यवहार करता है। और वैसी ही शान्ति पूर्वक सभी परिणामों को स्वीकार करता है। वह कार्य कुशल और यथार्थ होता है तथा किसी कार्य के समस्त परिणामों का अनुभव करता है। वह आँख बन्द कर काम नहीं करता; वह जानता है कि भाग्य या अकस्मात् कोई वस्तु नहीं।

शान्त मनुष्य का मस्तिष्क शान्त जलाशय के जल तल की भाँति होता है; यह जीवन और जीवन के पदार्थों को यथार्थ रूप से प्रतिविम्बित करता है। अशान्त मस्तिष्क जलाशय के क्षुब्ध जल-तल की तरह होता है और जो वस्तुयें इस के सामने आती हैं उनका विकृत रूप झलकाता है। अपने अंदर की विशद गहराई पर दृष्टिपात करते हुये आत्म-विजयी मनुष्य संसार का स्पष्ट प्रतिविम्ब देखता है। वह सृष्टि की पूर्णता देखता है; अपने अंश का साम्यभाव देखता है; जिन वस्तुओं को संसार अन्याय पूर्ण और विषादयुक्त समझता है (और जो पहले उसे भीं वैसे ही मालूम होती थीं) वे भी उसके पिछले कर्मों का परिणाम प्रतीत है होती हैं, अतएव वे आनन्द पूर्वक अखंड पूर्ण का अंग समझी जाती हैं। इस प्रकार उसकी शान्ति अपने आनन्द और ज्ञान के सामर्थ्य के भंडार के साथ उसके साथ रह जाती है।

शान्त व्यक्ति जब असफल होता है क्षुद्र असफल होता है। वह प्रत्येक वाह्य कठिनाई का सामना करने में समर्थ होता है जो उसके हृदय के अंदर की अत्यधिक पेचीदी कठिनाइयों और समस्याओं से जकड़े हुये होती

हैं। जो व्यक्ति अंताचल पर नियंत्रण करने में सफल होता है वह बाह्य जगत पर नियंत्रण करने में पूर्ण उपयुक्त होता है। शान्त मनुष्य कठिनाई के प्रत्येक पहलू का अनुभव करता है और उनके निराकरण का सर्वोत्तम मार्ग भी जानता है। क्षुब्ध मस्तिष्क विनष्ट मस्तिष्क के तुल्य है। वह दृष्टिहीन हो गया होता है, वह गंतव्य दिशा का ज्ञान नहीं रखता, सिर्फ अपने दुःख, सुख का अनुभव मात्र करता है। शान्त मनुष्य का सामर्थ्य उन पर आने वाली सभी कठिनाइयों से अधिक प्रबल होता है। कोई बात उसे भयभीत नहीं कर सकती, किसी भी दशा में वह सजग रहे बिना नहीं पाया जा सकता, कोई भी स्थिति उसको दृढ़ और अटल विचार से विचलित नहीं कर सकती। अपने कर्त्तव्य-पालन के लिये उसे चाहे जहां कहीं जाना पड़े, वहां ही उसका बल प्रदर्शित होगा, वहां ही उसका मस्तिष्क आत्म संयम में स्थित होकर अपनी गुप्त और गम्भीर शक्ति का परिचय देगा वह चाहे भौतिक, तथा आध्यात्मिक वस्तुओं में लगा हो, वह अपना कार्य एकाग्र शक्ति और पूर्ण दृष्टि से करेगा।

शान्ति का अर्थ है कि मस्तिष्क सामञ्जस्य में

व्यवस्थित और पूर्ण रूप से स्थिति हो इसकी सभी अवस्थाएँ, जो कभी अत्यधिक प्रतिकूल और कष्टकर होती हैं, अनुकूल हो जाती हैं और एक मुख्य सिद्धान्त में मिल जाती हैं जिसके बिल्कुल अनुरूप मस्तिष्क हो गया होता है। इसका अर्थ यह भी है कि बन्य वासनायें पालतू और अधिकृत हो जाती हैं, बुद्धि विशुद्ध हो जाती है और इच्छा सृष्टि की इच्छा में लुप्त हो जाती है; अर्थात् इसका आधार क्षुद्र, व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं रह जाता, प्रत्युत विश्व-कल्याण से इसका सम्बन्ध होता है जो 'वसुधैव कुटुम्बकम' को चरितार्थ करता है।

जब तक मनुष्य अविरत शान्त नहीं हो जाता तब तक वह पूर्ण विजयी नहीं होता। जब तक सन्निकट की वस्तुयें उसे बाधा पहुंचाती हैं तब तक उसका मस्तिष्क अपरिपक्व रहता है, उसका हृदय पूर्ण रूप से निर्मल नहीं हो गया होता। मनुष्य जब तक आत्म-प्रशंसा और और वंचना में लिप्त रहता है तब तक वह जीवन विजय के मार्ग में प्रगतिशील नहीं हो सकता। उसे जागृत होना चाहिये और इस बात का पूर्ण रूप से ज्ञान होना चाहिये कि उसके पाप, परिताप और संकट उसके अपने उत्पन्न किए हैं, और उसकी अपूर्ण अवस्था से सम्बन्ध रखते हैं। उसे

अवश्य ही समझना चाहिये कि उसके दुखों की जड़ उन्ही के पापों में है, दूसरों के पापों में नहीं। उसे शान्ति की आकांक्षा उसी प्रकार करनी चाहिये जैसे लोभी व्यक्ति धन की लालसा करता है; और उसे किसी आंशिक सफलता से संतुष्ट नहीं होना चाहिये। इस प्रकार वह अनुकंपा और बुद्धि बल तथा निश्चलता का अधिकारी होगा तथा उसकी आत्मा पर शान्ति की उसी प्रकार वर्षा होगी जिस प्रकार विश्रान्तिदायक तुषार-कण फूल पँखड़ियों पर गिरते हैं।

जहाँ शान्ति मस्तिष्क है वहाँ बल है, विश्राम है, वहीं प्रेम है, और वहीं बुद्धि है; वहाँ पर ऐसा व्यक्ति है जिसने अपने विरुद्ध सफलता पूर्वक अगणित संग्राम विजित किए हैं, जिसने अपनी ही असफलताओं के विरुद्ध गुप्त रूप से अधिक शान्ति का सामना करने के पश्चात् अन्त में विजय-प्राप्त की है।

८—अन्तर्दृष्टि और सुशीलता

सद्गुण की खोज और साधना में अन्ततः एक समय ऐसा आता है जब मस्तिष्क में एक दिव्य अन्तर्दृष्टि का उदय होता है। जो वस्तुओं के कारण और सिद्धान्तों के विषय में खोज करती है और जो एक बार प्राप्त हो जाने पर अपने उपलब्ध कर्त्ता को दृढ़ता पूर्वक सद्गुण में स्थित रखती है; वासनाओं के प्रहार से उसे सुरक्षित रखती है तथा विश्व के लिये कार्य करते रहने में उसे अपराजित रखती है।

जब सद्गुण की संस्कृति से विचार परिपक्व हो जाता है तो विषाक्त प्रवृत्तियां लुप्त हो जाती हैं, और प्रतिकूल कार्य असम्भव हो जाता है। जब व्यक्तिगत मनुष्य के व्यवहार को कार्य और कारण की अटूट शृंखलता रूप में अनुभूत किया जाता है तो अनुभव कर्त्ता का मस्तिष्क अंतिम रूप से सद्गुण का ही पक्ष लेता है, और निकृष्टतर स्वार्थपरता के तत्त्व सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं।

गौरवशाली जीवन

जब तक मनुष्य यथार्थ नियम का अनुशीलन नहीं करता, जो मनुष्य के जीवन में संचालित होता है, तब तक वह चाहे जिस किसी समय चाहे जैसा सद्गुण अभिव्यक्त करे, वह चरित्र की सुशीलता से स्थिर रूप से विभूषित नहीं होता सदाचार के कवच से पूर्ण रूप से सुसज्जित नहीं रहता, अपने अंतिम विश्रान्ति स्थल में सुरक्षित रूप से स्थित नहीं रहता। जब मनुष्य को वह पूर्ण अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती जो सत्कर्म और दुष्कर्म को जानती है तथा जो भले बुरे सभी कार्यों के परिणाम का अनुभव करती है, तो वह अपने चरित्र की उन अवस्थाओं में प्रलोभनों के आक्रमण से पथभ्रष्ट हो जाता है जो पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं की गई होतीं तथा जो उस समय तक उसकी आध्यात्मिक दृष्टि को धुँधली बनाए रखती हैं और पूर्ण दृष्टि का अवरोध करती हैं। इस प्रकार पथ-भ्रष्ट होने से वह अपनी आन्तरिक दुर्बलता का ज्ञान प्राप्त करता है जो उसका अवरोध किये होती है और उस अवरोध का निराकरण करने का प्रयत्न करने में संलग्न होने से वह सद्गुण के सोपान पर ऊँचा उठता है और जीवन के यथार्थ नियम की उस पूर्ण अन्तर्दृष्टि के समीप पहुँचता है जो मनुष्य के लिए

बनाती है।

कुछ विशेष परिस्थियों में मनुष्य मित्रों के प्रभाव लोकाचार वा वातावरण के कारण विवश हो संयम का अनुगम करता है, संयम का आधार उसकी आन्त-रिक पवित्रता वा शक्ति नहीं होती तो वह अपने में एक सद्गुण का होना अनुभव कर सकता है वा जान पड़ सकता है जिसके विषय में यथार्थ में वह कुछ भी नहीं जानता; किन्तु जब इस प्रकार के सब वाह्य प्रतिबंध हटा लिए जाए तो उसमें उस सद्गुण का अभाव प्रकट हो सकता है तथा प्रलोभन के प्रभाव में, गुप्त दुर्बलता और दुर्गुण अभिव्यक्त हो जायेंगे।

इसके विपरीत, महान सद्गुणी व्यक्ति, किसी परिचित वातावरण में, अपने दुर्बल साथियों के समान ही दिखाई पड़ सकता है, और उसका सद्गुण समीप के लोगों को अभिव्यक्त नहीं हो सकता है; किन्तु जब वह अकस्मात किसी घोर प्रलोभन वा असाधारण घटना के सम्पर्क में आता है तो उसका अंतर्व्याप्त सद्गुण अपने पूर्ण सौन्दर्य और शक्ति में प्रस्फुटित होता है।

अन्तर्दृष्टि दुर्गुण के आधिपत्य को नष्ट करती है और सत्कर्म के सिद्धान्त का निर्दोष व्यापार प्रकट करती

है। पूर्ण अन्तर्दृष्टि-युक्त व्यक्ति पाप नहीं कर सकता, क्योंकि वह सत्कर्म और दुष्कर्म को पूर्ण रूप से समझता है, और जो व्यक्ति सत्कर्म तथा दुष्कर्म को कार्य और कारण के सभी प्रकान्तर रूप में जानता है उसके लिये दुष्कर्म अंगीकार करना और सत्कर्म त्याग करना असम्भव है। जिस प्रकार विचारशील व्यक्ति भोज्यपदार्थ छोड़कर राख नहीं बटोर सकता, इसी प्रकार आध्यात्मिक रूप से जाग्रत व्यक्ति सत्कर्म को छोड़कर दुष्कर्म अंगीकार नहीं कर सकता पाप की विद्यमानता अविवेचना और अज्ञानता का परिचायक है; आध्यात्मिक दृष्टि विकल वा अविकसित नहीं होती है, और वहां सत्कर्म तथा दुष्कर्म के प्रकार के सम्बन्ध में मस्तिष्क में अनिश्चितता रहती है।

सद्गुण की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य दुष्कर्म की शक्तियों के विरुद्ध अपने को सन्नद्ध करता है जो अपनी शक्ति में उससे अधिक प्रबल प्रतीत होती हैं, और पूर्ण रूप से नहीं तो उससे कम लगभग अजेय अवश्य प्रकट होती हैं; किन्तु अन्तर्दृष्टि के आगमन से, वस्तुओं के प्रकार पर एक नया आलोक प्रकाशित होता है और दुर्गुण, अपने वास्तविक रूप में, एक तुच्छ नगण्य-तुच्छ, अशक्त पदार्थ, केवल नकारात्मक वस्तु प्रकट होता है, कोई प्रबल शक्ति या शक्तियों का समुदाय

नहीं प्रतीत होता। अन्तर्द्रष्टा व्यक्ति जानता है कि दुर्गुण का मूल अज्ञानता है– विवेकशील शक्ति नहीं है– और सभी पाप तथा संताप वहीं से उद्भूत होते हैं। इस प्रकार दुर्गुण को केवल सद्गुण की अविद्यमानता जान कर वह उससे घृणा नहीं करता, प्रत्युत प्रत्येक पापी और संतप्त व्यक्ति के लिये वह हृदय में दया का भाव उदय करता है।

वास्तव में जो व्यक्ति अपने हृदय में दुर्गुण पर इतना विजयी हो गया है कि दुर्गुण के प्रकार और उद्गम को जान सके तो वह किसी प्राणी से घृणा नहीं कर सकता, किसी प्राणी का तिरस्कार नहीं कर सकता, चाहे वह व्यक्ति सद्गुण से कितना हू दूर क्यों न हो, बल्कि चरित्र के पतन का पूर्ण रूप से अनुभव करता हुआ भी वह उस अज्ञानमय आध्यात्मिक अवस्था को समझता है जहाँ से यह पतन उत्पन्न होता है, इस कारण दूसरों पर दया करता है और उनकी सहायता करता है। प्रेम सदा अन्तर्दृष्टि का अनुगमन करता है और दया ज्ञान का अनुसरण करती है।

जो अन्तर्दृष्टि आत्म शुद्धि और सद्गुण के चिर-काल के परिचय से उत्पन्न होती है, वह 'चरित्र की पूर्णता'

के रूप में अभिव्यक्त होती है, जिसमें निश्चल शक्ति और मधुरता संयुक्त होती है; जो बुद्धि की निर्मलता, इच्छा की अछूती शक्ति, और हृदय की कोमलता-इन सब का संयोग होकर सुसंस्कृत, विनम्र तथा पूर्ण व्यक्ति की अभिव्यक्त कराता है जो; सहानुभूति, दया, शुद्धता तथा विवेक का अधिकारी होता है, इस प्रकार जहां "सद्गुण में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न होता है" वहां अन्तर्दृष्टि सद्गुण को अटल बनाती है और मस्तिष्क को प्रेम तथा सम्पूर्ण पवित्र तथा उत्कृष्ट वस्तुओं के आस्वादन में प्रवृत्त कराती है, और मनुष्य के भाल पर दिव्यता की छाप लगाती है.

जिस व्यक्ति का सद्गुण इस प्रकार का है जो परिवर्तित वातावरण में परिवर्तित नहीं होता, अपने साथी लोगों की परिवर्तनशील अवस्था से बदल नहीं जाता, वह व्यक्ति, दिव्य सद्गुण की अवस्था, को प्राप्त कर चुका होता है, वह महान 'सद्गुण' को समझता है; वह दुर्गुण से, एक हानि प्रद वस्तु के रूप में, सम्बन्ध नहीं रखता, प्रत्युत सद्गुण से ही सम्बन्ध रखता है; क्योंकि वह दुर्गुण की उपेक्षा करता है और विमल सद्गुण की खोज करता है, वह जानता है कि सद्गुण की खोज अथवा [illegible] के कारण ही लोग दुर्गुण से [illegible] हैं.

और इस प्रकार अनुभव करने पर उसके शान्ति पूर्ण हृदय में किसी व्यक्ति के विरुद्ध घृणा का भाव नहीं आ सकता '

इस प्रकार का व्यक्ति चाहे जितना अप्रसिद्ध क्यों न हो उसका जीवन शक्तिशाली होता है, क्योंकि सद्गुण संसार में प्रबलतम शक्ति है और उसके जींवित रहने तथा लोगों में हिलने मिलने से अपने मानव-समाज का वह अवर्णनातीत उपकार कर जाता है, यह हो सकया है कि उसके जीवन-काल में लोग उस उपकार का अनुभव का ज्ञान प्राप्त कर सकें ' सद्गुण की शक्ति इतनी प्रबल है कि विश्व का भाग्य-सूर्य सदा सद्गुण के ही हाथ में था, है और भविष्य में रहेगा ' सद्गुणी व्यक्ति मानव समाज के पथप्रदर्शक और उद्धारक हैं ' उन्नति के इस वर्तमान युग में वे ही अपने आदर्श जीवन के उदाहरण और अपने कार्यों की शक्ति से संसार को विकास पथ पर तीव्र गति से बढ़ाये जा रहे हैं; और यह किसी मायावी वा चमत्कारिक अर्थ में नहीं प्रत्युत बिल्कुल व्यवहारिक और साधारण अर्थ में ' जो सद्गुणी व्यक्ति संसार का उपकार करते हैं वे लोकोत्तर वे प्राणी नहीं हैं; जैसा कि कुछ अविकसित वुद्धि के लोग ऐसा ही प्रकट

करने का प्रयत्न करते हैं—बल्कि वे सदाचार के प्रवर्तक और सद्गुण के सिद्धान्त के अनुगामी साधारण मनुष्य हैं।

संसार न तो कभी दुष्कर्म के आधिपत्य में रहा है, न है और न कभी रहेगा, क्योंकि ऐसी अवस्था का अर्थ नास्ति होगा, कारण यह है कि दुष्कर्म केवल सत्कर्म की उसी प्रकार अविद्यमानता है; जिस प्रकार अंधकार प्रकाश की अविद्यमानता है; और अंधकार नहीं, बल्कि प्रकाश ही स्थिर शक्ति है; दुष्कर्म संसार में सबसे निर्बल पदार्थ है और यह कोई कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता। संसार केवल सद्गुण को आश्रय नहीं देता प्रत्युत स्वयं सद्गुण है और दुर्गुण सदा कमजोर पड़ता है और विफल होता है।

अन्तर्दृष्टि का अर्थ सत्य के उस आलोक में देखना है जो सब पदार्थों का प्रत्यक्षदर्शी है। जिस प्रकार दिन का प्रकाश संसार के सब पदार्थों को उनके यथार्थ रूप में अवलोकन कराता है उसी प्रकार जब सत्य का आलोक मस्तिष्क में प्रवेश करता है तो जीवन की सब वस्तुओं को उनके यथार्थ भाग में प्रदर्शित करता है, जो व्यक्ति सत्य की महानता में अपने हृदय का पर्यवेक्षण करता है,

वह दूसरे का हृदय भी पर्यवेक्षित करता है। जिस व्यक्ति ने अधिक समय के पर्यवेक्षण से उस पूर्ण सिद्धान्त को जान लिया है जो उसके मस्तिष्क को परिचालित करता है, उसने उस दिव्य सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया है जो विश्व का अवलम्ब और सार तत्व है

अन्तर्दृष्टि भ्रान्ति का निवारण करती है तथा मिथ्या विश्वासों को निर्मूल करती है। मनुष्य एक दुसरे की आस्थाओंपर आक्रमरा करते हैं और अज्ञानता में पड़े रहते हैं।यदि वे अपने पापों से मुक्त हो जाँय तो वे ज्ञानवान हो जाँय। मिथ्या विश्वास पाप से उत्पन्न होता है; तमसाच्छन्न नेत्रों से देखने पर मनुष्य दुष्कर्म को देखते हैं जो माया और अज्ञानता होती हैं, अपने हृदय में निपिद्ध वस्तुओं की कल्पना करने से उनके मस्तिष्क में दैत्य और आतंक का भय घुस जाता है जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं। जहाँ निर्मल अन्तर्दृष्टि होती है, वहाँ भय नहीं होता; और भूत, प्रेत, पिशाच दैत्य, असुर, शनि, राहु, केतु आदि अन्ध विश्वास से उत्पन्न वस्तुयें घोर स्वप्न में प्रदित भयानक वस्तुओं की तरह तंद्रा टूटते ही लुप्त हो जाती हैं तथा विशुद्धात्मा की दिव्य दृष्टि के सामने अनुपम सौन्दर्य तथा अविचल नियमों

का लोक उदय हो जाता है।

अन्तर्द्रष्टा व्यक्ति सन्तों के दिव्य जगत में, निमित्त पवित्रता के अल्पकालीन क्षणिक अनुभव की तरह नहीं, प्रत्युत मस्तिष्क की स्थिर और साम्यावस्था में, रमण करता है। उसने आत्मत्व और संताप द्वारा अपनी विस्तीर्ण यात्रा समाप्त कर ली है और शान्तिमय है; उसने विजय प्राप्त कर ली है और आनन्दमय है। वह संसार के सम्पूर्ण पापों, दुखों और क्लेशों को दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और स्पष्ट रूप से देखता है, किन्तु जब वह उनको उनके कारण, उत्पत्ति, वृद्धि और फलोत्पत्ति के यथार्थ रूप में ही देखता है, उनको उस रूप में नहीं देखता जिस रूप में वे उसे पहले दिखाई पड़ते थे जब वह स्वयं उनमें अज्ञानता पूर्वक ग्रसित था और उसका मस्तिष्क दुःख से विकृत था। जिस प्रकार माता बच्चे को शैशवकाल में असहाय अवस्था से बढ़ते देखती है उसी प्रकार वह, परिवर्तन और क्लेशमय काल को पार कर, अपरिपक्व अवस्था से परिपक्व अवस्था में जाते हुये प्राणियों के विकास को, असीम दया और प्रेम पूर्वक देखता है।

वह समस्त वस्तुओं में प्रकाशित न्याय को देखता

है। जहाँ लोग अन्याय की विजय देख कर क्रोध में उनमत्त होने लगते हैं, वहाँ वह जानता है कि अन्याय की विजय नहीं हुई है, प्रत्युत वह शून्यपद को प्राप्त हुआ है। वह जानता है कि दुर्दान्त न्याय, संसार की दृष्टि से अदृश्य रहने पर भी, सदा अविचल रहता है। वह पाप की क्षुद्रता,अतिशय दुर्बलता और निपट अज्ञानता को पुण्य की महानता, अजेय शक्ति तथा सर्वदर्शी ज्ञान की तुलना में देखता है। और इस प्रकार जान कर और देखकर उसका मस्तिष्क अन्तिम रूप से पुण्य में स्थिर हो जाता है। वह सत्य का अनुरक्त हो जाता है तथा सत्य आचरण में ही उसे आनन्द का अनुभव होता है।

जव मस्तिष्क में अन्तर्दृष्टि का उदय होता है तो यथार्थता बिल्कुल अभिव्यक्त हो जाती है; विश्व से पृथक आध्यात्मिक यथार्थता नहीं, जीवन के व्यापार से पृथक कोई विकल्पात्मक यथार्थता भी नहीं, प्रत्युत विश्व की ही यथार्थता, यथार्थ वस्तुओं की ही यथार्थता। अन्तर्दृष्टि परिवर्तन और विनाश का भी अतिक्रमण कर जाती है क्योंकि यह परिवर्तन में स्थिर, क्षणभंगुर में स्थायी और विनाशशील में अमर वस्तुओं का परिशीलन करती है।

और यहीं पर सन्तों और महात्माओं तथा दूसरे शब्दों में मानव-समाज के महान पथ प्रदर्शकों के चरित्र के अविकल उत्कर्ष का अर्थ प्रदर्शित होता है जहाँ वे यथार्थता का परिज्ञान प्राप्त करते हैं और उसी में अवस्थित होते हैं; वे जीवन को उसी प्रकार जानते हैं जैसा वह पूर्णावस्था में होता है; वे सदाचार के नियमों का ज्ञान रखते हैं और अनुगमन करते हैं। वे आत्म विजय प्राप्त कर सम्पूर्ण माया पर विजय प्राप्त कर लेते हैं: पाप पर विजय प्राप्त कर संताप पर विजयी होते हैं, अपनी पूर्ण शुद्धि कर पूर्ण ब्रह्म का दर्शन करते हैं

जो व्यक्ति न्याय, पवित्रता और सत्कर्म को प्राप्त करता है तथा सभी भ्रान्ति, दर्प और पराजय का सामना होने पर भी उन सद्गुणों का अनुगमन करता है, वह अन्त में अन्तर्दृष्टि को प्राप्त करता है और उसकी दृष्टि सत्य के छोर पर खुलती है; तब उसकी कठिन साधना समाप्त होती है; अगम्य अवस्थाएं उस पर प्रभाव नहीं डालतीं, और न उसे संतप्त करती हैं; उसके समीप पवित्रता और आनन्द का स्थायी निवास होता है और संसार पुनः सत्य की विजय में आनन्द मनाता है तथा एक और विजयी पुरुष उसकी जय मनाता है।

६—विजेता पुरुष

अन्तरात्मा पर विजय प्राप्त करने से एक अपूर्व प्रकार की चेतनता उत्पन्न होती है। इसे हम उस साधारण मानवीय चेतनता से विभिन्न मालूम होने के लिये दिव्य चेतनता कहेंगे जो एक ओर तो व्यक्तिगत लाभों और इच्छा पूर्ति की कामना रखती है, दूसरी ओर ग्लानि और पश्चाताप से ग्रसित होती है । दिव्य चैतन्यता का सम्बन्ध मानव समाज; विश्व; सनातन सत्य; सदाचार, विवेक और सत्य से होता है; व्यक्तिगत आनन्द; संरक्षण और पालन से नहीं होता। यह बात नहीं है कि व्यक्तिगत सुख नष्ट हो जाते हैं, बल्कि इसकी कामना और आकांक्षा नहीं रह जाती, इसको सर्व प्रथम स्थान नहीं दिया जाता; इसका संशोधन हो जाता है और इस का स्वागत सत्य विचार तथा कार्य के परिणाम रूप में होता है, यह स्वयं अभीष्ट पदार्थ नहीं होता। दिव्य

चैतन्यता में न तो पाप होता है, न परिताप । पाप की भावना तक दूर हो गई होती है, और जीवन का यथार्थ उद्देश्य तथा क्रम प्रकट हो जाने से पश्चात्ताप का कोई कारण नहीं रह जाता । इसी अवस्था को भिन्न भिन्न धर्माचार्यों ने भिन्न भिन्न नाम से संबोधित किया है। हिन्दू शास्त्रकारों ने मोक्ष और बुद्ध भगवान ने निर्वाण नाम से इसे संबोधित किया है।

साधारण मानवीय चैतन्यता 'आत्म चैतन्यता' होती है। आत्म, व्यक्तित्व, अन्य सभी वस्तुओं के पहिले स्थान पाता है; आत्म के सम्बंध में अनवरत चिन्ता और आशंका रहती है; इसके लोप की सम्भावना घोर तम विपत्ति समझी जाती है, और इस की सतत रक्षा विश्व में सब से आवश्यक बात समझी जाती है।

आत्म-चेतन व्यक्ति इच्छाओं का दास होता है; दिव्य-चेतन व्यक्ति इच्छाओं का स्वामी होता है। आत्म चेतन व्यक्ति सुख दुख का विचार करता है; परन्तु दिव्य चेतन व्यक्ति सुख दुख का विचार किये बिना ही केवल सदाचार के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता है।

आत्म चैतन्यता से दिव्य चैतन्यता तक पहुंचने के लिये, पाप और लज्जा के भावों से युक्त आत्म दासता से, पवित्रता और पराक्रम के भावों से युक्त सत्य की मुक्ति तक पहुंचने के लिये दौड़ मची हुई है। इस संघर्ष में महात्मा और महापुरुष विजयी हो चुके हैं। पूर्व जन्मों में वे आत्म चेतनता की सभी अवस्थाओं को पार कर चुके हैं और अब आत्म पर विजय प्राप्त कर वे दिव्य चेतन हो गये हैं। वे इस भूमंडल पर विकास के शिखर पर पहुँच चुके हैं; और आत्म चेतन रूप में उन्हें पुनर्जन्म लेने की आवश्यकता नहीं रह गई है। वे जीवन के अधिष्टाता हैं। आत्म विजयी होकर उन्होंने महानतम ज्ञान अर्जित कर लिया है। इन्हीं महान व्यक्तियों में से कुछ लोग देवता या ईश्वर के अवतार माने जाकर पूजे जाते हैं, क्योंकि वे अपने में ऐसा ज्ञान और चैतन्यता अभिव्यक्त करते हैं जो साधारण मानवीय आत्म चैतन्यता से विभिन्न

होती है और इस कारण वह एक अगम्य रहस्य से युक्त और व्याप्त मानी जाती है। तथापि इस दिव्य चैतन्यता में कोई रहस्य नहीं होता, प्रत्युत इसके विपरीत एक पारदर्शी सरलता होती है जो आत्म की भ्रान्तियों को निर्मूल कर देने पर व्यक्त होती है।

महापुरुषों की स्थिर भद्रता, उत्कृष्ट विवेक और पूर्ण समाधि ये गुण जो आत्म चेतनावस्था से विचार किए जाने पर अमानुषिक जान पड़ते हैं —मस्तिष्क में दिव्य चेतनता की प्रथम झलक आने पर सरल और स्वाभाविक जान पड़ते हैं; और जब तक आत्म चेतन व्यक्ति द्वारा उच्चकोटि का आचार प्राप्त नहीं किया जाता तब तक ऐसी दिव्य चेतनता प्रकट नहीं होती।

मनुष्य उसी परिमाण में दिव्य चेतन, दिव्य विवेकी और दिव्य रूप से भद्र और पराक्रमी हो पाता है जिस परिमाण में वह अपने अन्तर्गत उन वासनाओं का दमन और निग्रह करता है जिनके द्वारा मानव-स्वभाव [illegible] और [illegible] होता रहता है। यही [illegible] अभिलाषा है जो स्वयं [illegible] [illegible] करता है। स्थिर भद्रता, उदार सहानुभूति और [illegible] शुद्धता जो [illegible] [illegible] रूप में [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] के [illegible]

करते हैं, वे आत्म-विजय के परिणाम और उस संघर्ष के स्वाभाविक फल होते हैं जो उन मानसिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करने और ग्रहण करने के लिये होता है जिसका अनुसरण आत्म चेतन व्यक्ति बिना समझे आँख मूंद कर करता है।

आत्म चेतन व्यक्ति अनुचर व्यक्ति है। वह अपनी अभिरुचि का आज्ञा पालन करता है और वासनाओं तथा दुखों और परितापों का दास होता है जो उन वासनाओं का प्रभुत्व स्वीकार करने से उसमें उतपन्न होती हैं। वह पापों और परितापों से अभिज्ञ रहता है, फिर भी उन अवस्थाओं से मुक्ति का मार्ग नहीं देख पाता इस लिये वह धर्म सूत्रों का आविष्कार करता है जिन्हें वह उद्योग के स्थान पर स्थापित करता है और जो उसे अनिश्चित आशा में क्षणिक विराम प्रदान कर उसे पाप का सहज शिकार और परिताप का आज्ञाकारी दास बना देते हैं।

दिव्य चेतन व्यक्ति अधिष्ठाता व्यक्ति है। वह आत्म का अनुसरण न कर सत्य का अनुवर्ती होता है। वह अपनी अभिरुचियों का शमन और नियंत्रण करता है वह पापों और परितापों के ऊपर एक वर्धमान शक्ति का ज्ञाता होता है और यह जानता है कि आत्म विजय द्वारा

इन दुरवस्थाओं से मुक्ति पाने का मार्ग है वह अपनी सहायता के लिये धर्म सूत्रों की आवश्यकता नहीं समझता बल्कि उचित कार्य करने में अपनी शक्ति लगाना है और उन्नतिशील पवित्रता और पराक्रम तथा विजय के भाव से आनन्द का अनुभव करता है। जब उसकी विजय पूर्ण हो जाती है तो उसमें अभिरुचि नहीं रह जाती, केवल वे ही रह जाती हैं जो उसे सत्यका अनुभव न कराती हैं; तब वह पापों का विजेता होजाता है और परितापों का दास नहीं रह जाता।

ज्ञानवान, बुद्धिमान, सतत शान्त और प्रसन्न वही व्यक्ति है जिसने अपने अन्तर्गत शासन करने वाले दुर्दमनीय आत्म का दमन, पराभव और बहिष्कार कर दिया है; परिताप की आन्धी उसे विचलित नहीं करती; चिन्तायें और विपत्तियां, जो मनुष्यों को व्याकुल कर देती हैं

मनुष्य के लिए आत्म को छोड़ कर कोई शत्रु नहीं, अज्ञानता छोड़ कर कोई अंधकार नहीं, उसकी अपनी प्रकृति के दुर्दान्त तत्वों से उत्पन्न यातना छोड़ कर कोई अन्य यातना नहीं।

कोई भी पुरुष यथार्थ विवेकशील नहीं है जो इच्छाओं और अनिच्छाओं, आकांक्षाओं और पश्चातापों, आशाओं और निराशाओं,पापों तथा परितापों से आक्रान्त हैं। ये सब अवस्थायें आत्म-चेतन अवस्था से सम्बंध रखती हैं, और मूर्खता,दुर्बलता,तथा दासता की द्योतक होती हैं।

वही व्यक्ति यथार्थ चतुर है जो अपने सांसारिक धंधो में फँसा रहने पर भी सदा शान्त, सदा भद्र और सदासंतुष्ट रहता है; वह वस्तुओं को वैसे ही स्वीकार करता है जैसी वे होती हैं, और इच्छा तथा खेद, आकांक्षा तथा पश्चाताप नहीं करते। ये वस्तुयें दिव्य चेतनावस्था, सत्य लोक की होती हैं और ज्ञान, वल तथा विजय की द्योतक होती हैं।

जो व्यक्ति संम्पत्ति, कीर्ति और आनन्द की आकांक्षा नहीं रखते हैं; उसके पास जो होता है उसी पर तृप्त रहता है। तथा उसके अपने पास से चले जाने पर भी शोक नहीं करता, वही यथार्थ में विवेकी है।

जो व्यक्ति सम्पत्ति, कीर्ति और आनन्द की आकांक्षा

रखता है: उसके पास जो कुछ होता है उसपर संतुष्ट नहीं होता, तथा उसके भी अपने पास से चले जाने पर शोक करता है, वही यथार्थ में मूर्ख है।

मनुष्य विजय के लिये सुसज्जित होता है परन्तु भू-विजय से काम नहीं चल सकता; उसे अपने ऊपर विजय प्राप्त करनी चाहिए। भूविजय से मनुष्य अस्थायी शासक होता है, परन्तु आत्म विजय से वह चिरंतन विजेता होता है।

मनुष्य विजय के लिए उत्पन्न हुआ है; किन्तु पशुबल द्वारा दूसरे व्यक्तियों पर नहीं, प्रत्युत आत्म नियमन द्वारा अपनी प्रकृति पर विजय, पशुबल द्वारा दूसरे व्यक्तियों पर विजय आत्माभिमान का सूचक है किन्तु आत्मनियमन द्वारा आत्मविजय विनम्रता का सूचक है।

और शोकाकुल नश्वर प्राणी नहीं रहता, प्रत्युत पवित्र, उल्लसित, उन्नत अमरप्राणी; होता है। वह वस्तुओं की गति-विधि का प्रसन्न और शान्त हृदय से अनुभव करता है; वह दिव्य विजेता, जीवन तथा मृत्यु का अधिष्ठाता होता है।

१०—ज्ञान और विजय

विश्वास गौरवशाली जीवन का प्रारम्भ है, किन्तु ज्ञान उसकी निष्पत्ति है। विश्वास मार्ग लक्षित करता है परन्तु ज्ञान लक्ष्य है। विश्वास को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है; परन्तु ज्ञान बाधाओं को पार चुका होता है। विश्वास सहन करता है, ज्ञान मौज करता है। विश्वास अंधकार में चलता है परन्तु भरोसा रखता

गौरवशाली जीवन ज्ञान का जीवन है; और ज्ञान का अर्थ पुस्तक-पठन नहीं, प्रत्युत जीवन का ज्ञान है। कंठाग्र की हुई नहीं, स्थूल बातें नहीं, प्रत्युत ग्रहण और अवधारण किए हुये जीवन के गम्भीर तथ्य और सत्य। इस ज्ञान से पृथक मनुष्य के लिये विजय कहीं नही है, उसके क्लान्ति पगों के लिये विराम नहीं है, उसके व्यथित हृदय के लिये विश्रामस्थल नहीं है। मूर्ख के लिये चतुर हुये बिना कोई मुक्ति नहीं। पापी के लिये पुण्यात्मा हुये बिना कहीं मोक्ष नहीं। पवित्र और निर्मल जीवन द्वारा प्राप्त दिव्य ज्ञान के बिना जीवन की यातनाओं और क्षोभों से मुक्ति पाने का मार्ग नहीं। मस्तिष्क की प्रबुद्ध अवस्था के अतिरिक्त मनुष्य के लिये कहीं चिर शान्ति नहीं; और पवित्र जीवन तथा प्रबुद्ध मस्तिष्क एक रूप ही हैं।

किन्तु मूर्ख के लिये मुक्ति है। क्योंकि ज्ञान अर्जित किया जा सकता है; पापी के लिये मोक्ष है, क्योंकि पवित्र आचरण अनुसरण किया जा सकता है; जीवन की यातनाओं और क्षोभों से त्राण का मार्ग है। क्योंकि जिस किसी की भी आकांक्षा हो-चाहे धनी हो चाहे निर्धन, चाहे विद्वान हो; चाहे, मूर्ख-निरमलता की नीची पगडंडी

पर पहुंच सकता है, जो पूर्णज्ञान तक पहुंचाती है। और इसी कारण—कि बंदी के लिए मुक्ति और पराजित के लिए विजय है—देव लोक में आनन्द आच्छादित है और भूमंडल उल्लसित है।

ज्ञानी व्यक्ति, अपने ऊपर विजयी होने के कारण, पाप, रोग और जीवन की सभी विषम अवस्थाओं पर विजयी होता है। पाप और संताप से जर्जरित पुरातन मस्तिष्क में वह पवित्रता और शान्ति से गौरवान्वित एक नूतन मस्तिष्क प्रस्फुटित करता है। वह पाप के पुरातन संसार से ध्वस्त हो चुका है और एक नवीन लोक में पुनर्जीवित होता है, जहां निर्मल प्रेम और निर्दोष नियमों का राज्य है, जहां पाप का नाम ही नहीं, और जहां वह अमर पुरुष मृत्यु से परे हो जाता है।

हो सका है। वे आत्म का उसी प्रकार अनुसरण करती हैं, जिस प्रकार छाया पदार्थ का। जहाँ स्वार्थपूर्ण इच्छायें जाती हैं वहीं वे जाती हैं; जहाँ पाप होता है, वहीं वे होती हैं आत्म में कहीं विश्रान्ति नहीं; आत्म में कहीं आलोक नहीं, और जहाँ दुर्दमनीय वासनाओं की लपट तथा उपभोग्य आकांक्षाओं की आग धधकती है, वहाँ विवेक और शान्ति की शीतल वायु का अनुभव नहीं किया जा सकता।

संरक्षण और आश्वासन, आनन्द और विश्राम, संतोष और तृप्ति, सुख और शान्ति — ये आत्म विजय के अधिकार से प्राप्त विवेकशील व्यक्तिओं की स्थिर सम्पत्ति हैं। सदाचरण क परिणाम और निर्मल जीवन का पारिश्रमिक हैं।

उत्तम जीवन का सार ज्ञान है और ज्ञान का भाव शान्ति है। जीवन की सभी गुत्थियों में आत्म पर विजय प्राप्त करने का अर्थ जीवन को आत्म के स्वप्न में प्रतीत होने की भाँति नहीं, प्रत्युत सम्यक रूप से यथार्थ में जानना है। सभी मार्गों में इसे शान्तिमय रहना है। जीवन की दैनिक घटनाओं के दुख और शोक से प्रभावित होना नहीं।

जिस प्रकार व्युत्पन्न विद्वान अशुद्धि और अपूर्ण

इसी प्रकार सदाचरण का निपुण अनुवर्ती अपनी भवितव्यता के सम्बन्ध में भय और आशंका से आक्रान्त नहीं होता। वह अपने हृदय की अज्ञानता को निर्मूल और ध्वस्त कर चुका होता है। वह ज्ञान प्राप्त कर चुका होता है और वह जानता है कि उसे ज्ञान प्राप्त हो चुका है, और वह इस कारण जानता है कि जहाँ दूसरों के असत्याचरण से परीक्षा किए जाने पर पहले वह असफल और विचलित हो चुका है, वहाँ अब दूसरों के दोषारोपण और उपालंभ की कठिनतम परीक्षा के समय भी वह अपने धैर्य और शान्ति को अविचल रखता है।

यहाँ पर दिव्य ज्ञान की महत्ता और विजय है कि भले और बुरे दोनों प्रकार के कार्यों की प्रकृति समझ कर सत्कार्य का ज्ञानवान अनुवर्ती दूसरों के अधम कार्यों से उत्तेजित नहीं होता। उसके प्रति दूसरों के कार्य उसमें दुख और शोक का भाव उत्पन्न नहीं कर सकते और न उसकी शान्ति हरण कर सकते हैं। पुण्य में विश्राम लेने के कारण पाप न तो उसे स्पर्श कर सकता है, न हानि पहुंचा सकता है। वह पाप का बदला पुण्य से देता है और पाप की दुर्बलता को पुण्य के बल से पराभूत करता है।

जो व्यक्ति पाप कर्मों में रत रहता है, वह क[illegible] [illegible]ा करता

है कि दूसरों के पाप कर्म उसे हानि पहुंचाने के लिये प्रयत्न हैं और उसके लिये दुख पहुंचाने के साधनों से युक्त हैं और वह अपने पाप कर्मों के कारण नहीं, क्योंकि उन्हें वह देखता ही नहीं बल्कि दूसरों के पाप कर्मों के कारण दुख से क्षुब्ध और शोक से परिपूर्ण हो जाता है। अज्ञानता में ग्रस्त होने के कारण उसमें मानसिक बल नहीं होता, अवलम्ब नहीं होता, स्थायी शान्ति नहीं होती।

आत्म-विजयी व्यक्ति यथार्थ द्रष्टा है; मनों या अस्मानुपेय घटनाओं का नहीं, क्योंकि इस तरह की दृष्टि संकुचित और क्षुद्रमय है, बल्कि विशेष पक्षों में और दैवी सिद्धान्तों के रूप में यथार्थ जीवन का द्रष्टा है, आध्यात्मिक जगत, सृष्टि के नियम, सृष्टि के प्रेम और सृष्टि की स्वतंत्रता का द्रष्टा है।

से बहुत ऊपर उठा होता है; और इतने ऊँचे उठे होने के कारण वस्तुओं की नियमित गतिविधि का अनुभव करता है अपरिहार्य घटना से ग्रस्त होने पर शोक नही प्रकट करता। वह परिताप के जगत से परे रहता है, इस लिये नही कि वह निष्प्रभ और निष्ठुर हो गया है, बल्कि वह ऐसे प्रेम लोक में निवास करता है जहाँ आत्म का विचार प्रवेश नही कर सकता और जहाँ दूसरों का कल्याण ही सब कुछ है। वह परिताप रहित होता है क्योंकि वह आत्म रहित होता है, वह गम्भीर होता है क्योंकि वह जानता है किजो कुछ वह पाता है वह ठीक है, जो कुछ उससे छीन लिया जाता है वह भी ठीक है। वह परिताप को प्रेम में परिणत कर लेता है और अनन्त कोमलता तथा प्रचुर दया से ओतप्रोत रहता है। उसकी शक्ति दुर्धर्ष, महत्वाकांक्षी और सांसारिक नहीं होती, बल्कि निर्मल, शान्त और दैवी होती है और उसमें एक गुप्त शक्ति होती है जो यह जानती है कि संसार और दूसरों के उपकार के लिए कब अकड़ना और कब झुकना चाहिए।

वह उपदेशक होता है यद्यपि वह बोलता नहीं; वह अध्यक्ष होता है यद्यपि वह दूसरों पर शासन की इच्छा नहीं रखता; वह विजेता होता है यद्यपि वह दूसरों को विजित करने का

कभी उपयोग नहीं करता। वह सृष्टि के नियमों का संचालन कराने के लिए चेतन उपकरण बन गया होता है और मानव-जाति के विकास का निर्देश करने के लिए एक प्रबुद्ध शक्ति हो गया होता है।

इस नवीन युग के प्रारम्भ के समय, इस शुभ संदेश को संसार भर में प्रचारित होने दो, कि पाप मग्न के लिए भी पवित्रता का मार्ग है, संकटापन्न के लिए भी मुक्त है, असहाय के लिए भी क्षतिपूर्ति का स्थल है और पराजित के लिए विजय है। ऐ मनुष्य! तुम्हारा हृदय पाप से चाहे कितना लिप्त हो, परस्पर विरोधी आकांक्षाओं से चाहे कितना भरा हो, उसमें एक शक्ति का स्रोत है, बल का दुर्ग है; वह परम पुरुष का निवास स्थल है। और विजय-माला तेरी प्रतीक्षा कर रही है; तेरी चैतन्यता में सच्चाई की और सामर्थ्य का उदय निहित है। ऐ अनश्वर ज्योति! अपने राज सिंहासन पर आरूढ़ हो।

[इति]

'साम्यवाद का सन्देश'

(लेखक—श्री सत्यभक्त)

आज संसार के अन्तस्थल में स्वार्थी पूंजीपतियों के सङ्गठित गिरोह की लूट-खसोट के कारण, विश्व-व्यापी आर्थिक संकट, बेकारी तथा गरीबी बढ़ती जाती है। इसका कारण है—

आर्थिक असमानता! स्वार्थान्ध धनिकों की अर्थ लिप्सा! गरीबों की सूखी हड्डियों की कमाई पर अपने वैभव की इमारत खड़ी करने वाले पूंजीपतियों की रक्त पिपासा! मालिकों की शोषण नीति!!

संसार में वास्तव में धन की कमी नहीं है। न उन्हीं वस्तुओं की कमी है जिनकी आवश्यकता मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह के लिये पड़ती है। आज दिन दुनियाँ पहले से अधिक सम्पन्न है। इन सब लोगों की जरूरतें पूरी करने के लिये जरूरत से ज्यादा साधन इस समय दुनियाँ में मौजूद हैं। फिर क्या कारण है कि आधे से ज्यादा लोगों को एक वक्त भर पेट खाने को नहीं मिलता?

एक ओर लोग भूख की ज्वाला में झुलस रहे हैं दूसरी ओर उन्हीं का रक्त चूस कर पुष्ट हुए गिने लोग यहीं अनाज की होली खेल रहे हैं। कहीं मिल इसलिए उपयोग की चीजों और खाद्य पदार्थों को नष्ट कर रहे हैं। बेकारी बढ़ती जा रही है। ऐसी दशा में दुनियाँ की मुक्ति का रास्ता क्या है?

'साम्यवाद'

राखी

—:o:—

[वीर रस–प्रधान खण्ड–काव्य]

लेखक

'श्रीयुत अज्ञात'

नौजवान कवि ने भारतीय जीवन के भूले हुए पहलू के आधार पर एक राष्ट्रीय तथा सजीव साहित्य का निर्माण किया है।

महाराणा संग्राम सिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणी करुणावती का योग्यतापूर्ण शासन—गुजरात के सूबेदार बहादुरशाह का आक्रमण—महाराणी का अवरोध करना तथा विजय की सम्पूर्ण उमंगों को लेकर युद्ध क्षेत्र में सैन्य संचालन—भीषण मारकाट—आक्रमण कारियों को पराजित करने में सहायता पाने के लिए बादशाह हुमायूं के पास 'राखी, भेजना—हजारों राजपूत बालाओं तथा सैनिकों का अपने स्वदेश, स्वजाति तथा स्वधर्म के लिये आत्माहुति—हुमायूं का सहायता के लिये आना इत्यादि हृदयद्रावक घटनाओं का ज्वलंत चित्रण कवि ने अनुपम अनुभूति के साथ किया है।

कवि का भाव, शैली; वस्तुचित्रण, पद विन्यास अपने ढंग का संगीतमय तथा अनूठा है।

सुनहली सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥)